श्रीवीतरागाय नमः ।

[जैनहितैषीके पांचवेंवर्षका उपहार]

काशीवासी कविवर वृन्दावनजी विरचित

प्रवचनसार-परमागम ।

देवरी (सागर) निवासी श्रीनाथूरामप्रेमी-
द्वारा संशोधित

और

मुम्बईस्थ-जैनहितैषीकार्यालयद्वारा
निर्णयसागर प्रेस बम्बईमें मुद्रित ।

श्रीवीर नि० संवत् २४३५ । ई० सन् १९०८ ।

प्रथमावृत्ति] नं० ५ [न्योछा० १) रु०

प्रस्तावना ।

पाठक महाशय ! लीजिये, श्रीजिनेन्द्रदेवकी कृपासे हम आज काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीका **प्रवचनसार** परमागम भी लेकर उपस्थित हैं। इसका एक बार आद्योपान्त स्वाध्याय करके यदि आप अपनी आत्माका कुछ उपकार कर सकें, तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

इस ग्रन्थके मूलकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्य विक्रमसंवत् ४९ मे नंदिसंघके पट्टपर विद्यमान थे, ऐसा पट्टावलियोंसे पता लगता है आपके बनाये हुए ८४ प्राभृत (पाहुड़) ग्रन्थ कहे जाते हैं जिनमेंसे इस समय आठ दश पाहुड़ उपलब्ध हैं। और उनमे पंचास्तिकाय, नाटकसमयसार, तथा प्रवचनसार ये तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंकी द्वितीयसिद्धान्तमें अथवा द्वितीय श्रुतस्कंधमें गणना है। और इनमें शुद्ध निश्चयनयको प्रधान मानकर कथन किया गया है। इस प्राभृतत्रयीमेंसे पंचास्तिकाय और नाटकसमयसार छप चुके हैं। केवल प्रवचनसार रह गया था, सो आज यह भी मुद्रित होकर तयार है। यद्यपि भाषावचनिका तथा मूलपाठके विना इस ग्रन्थका सर्वांगपूर्ण उद्धार नहीं कहलावेगा, तो भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि, प्रवचनसार प्रकाशित नहीं हुआ है।

इस ग्रन्थकी संस्कृतमें दो टीकाएँ उपलब्ध हैं, एक श्रीअमृत-

---

१ इन दोनों ही संस्कृत टीकाओंके छपनेका प्रबन्ध हो रहा है।

२ कुन्दकुन्दके तीनों ग्रन्थोंपर अमृतचन्द्रकी टीकायें हैं और ये सब प्राप्य हैं। अमृतचन्द्राचार्य संवत् ९६२ में नंदिसंघ के पट्ट पर विद्यमान थे।

चन्द्रसूरिकी, तत्त्वदीपिका टीका और दूसरी श्रीजयसेनाचार्य-की टीका। इनमेंसे तत्त्वदीपिका टीकाके आधारसे आगरानिवासी स्वर्गीय पंडित हेमराजजीने विक्रम संवत् १७०९ में शाह-जहाँ बादशाहके राज्यकालमें भाषा वचनिका बनाई है। और इसी भाषा वचनिकाके आधारसे काशीनिवासी कविवर वृन्दावन-जीने यह पद्यबद्ध टीका बनाई है। यह टीका उन्होंने संवत् १९०५ में अर्थात् आजसे ६० वर्ष पहले पूर्ण की थी।

कविवर वृन्दावनजीका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंकी आ-लोचना हमने जैनहितैषीके गतवर्षके उपहारग्रन्थ वृन्दावन विला-समें खूब विस्तारसे की है। इसलिये अब उसकी यहांपर पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। जिन महाशयोंको पढ़नेकी रुचि हो, वे उक्त ग्रन्थ मंगाकर देख लें।

इस ग्रन्थको हमने दो हस्तलिखित प्रतियोंके अनुसार संशोधन करके छपाया है। जिनमेंसे एक तो कविवर वृन्दावनजीकी स्वयं हाथकी लिखी हुई प्रथम प्रति थी, जो हमें काशीके सरस्वतीभंडा-रसे प्राप्त हुई थी और दूसरी करहल निवासी पंडित धर्मसहायजीके द्वारा प्राप्त हुई थी। यह दूसरी प्रति भी पहलीके समान प्रायः शुद्ध है और शायद पहली प्रतिपरसे ही नकल की हुई है।

कविवर वृन्दावनजीकी लेखनशैली आदिसे अन्त तक एक सी नहीं मिलती। उन्होंने एक ही शब्दको कई प्रकारसे लिखा है। मैं में, हैं हें, तैं तें तै, कै के, नहिं नहि नहीं, होहिं होंहिं होहि, सों

[1] यह टीका बम्बई यूनीवर्सिटीने अपने एम. ए. के संस्कृत कोर्स-में भरती की है।

[2] हेमराजजीने भी तीनों ग्रन्थोंकी भाषा वचनिका बनाई है।

सौं, त्यों त्यौं, कह्यो कह्यौ, विषै विषें विषैं, आदि जहां जैसा जीमें आया है लिखा है। जान पड़ता है ऐसे शब्दोंके लिखनेका उन्होंने कोई नियम नहीं बनाया था, विकल्पसे वे सबको शुद्ध मानते थे। उनके लेखमें श, ष, और सकी भी ऐसी ही गड़बड़ थी। जहां कविताके अनुप्रासादि गुणोंका कोई प्रतिबन्ध नहीं था, वहां भी उन्होंने शुद्ध शब्दपर ध्यान देकर शकारादिका प्रयोग नहीं किया है। सर्वत्र इच्छानुसार ही किया है। वर्तमान लेखनशैलीसे विरुद्ध होनेके कारण हमने ऐसे स्थानोंमें जहां कि तुकान्त अनुप्रासादिकी कोई हानि नहीं होती थी, शुद्ध शब्दोंके अनुसार ही शकार सकारका संशोधन कर दिया है। तैं तें के कै आदिके संशोधनमें कहीं २ मूल प्रतिके समान ही विकल्प हो गये हैं, तोभी जहां तक हमसे बन पड़ा है आदिसे अन्त तक एक ही प्रकारसे लिखा है।

कविवरकी भाषामें जहां तहां पुंलिंगके स्थानमें स्त्रीलिंगका प्रयोग किया गया है। सो भी ऐसी जगह जहां हमारे पाठकोंको अटपटा जान पड़ेगा। हमारे कई मित्रोंका कथन था कि, इसका संशोधन कर देना चाहिये। परन्तु हमने इसे अच्छा न समझा। ऐसा करनेसे ग्रन्थकर्ताके देशकी तथा समयकी भाषाका क्या रूप था, इसके जाननेका साधन नष्ट हो जाता है। संशोधनकर्ताका यही कार्य है कि, वह दो चार प्रतियोंपरसे लेखकोंकी भूलसे जो अशुद्धियां हो गई हैं, उनका संशोधन कर देवे। यह नहीं कि, मूलकर्ताकी कृतिमें ही फेरफार कर डाले। खेद है कि, आजकल बहुतसे ग्रन्थप्रकाशक इस नियमपर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं।

पहले यह ग्रन्थ मूल, संस्कृतटीका और भाषावचनिकाके साथ

छपनेके लिये रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके प्रबंधकर्ताओंने लिखवाया था। परन्तु जब टीका तयार न हो सकी और शास्त्रमालाके दूसरे संचालककी इच्छा इसे प्रकाशित करनेकी न दिखी, तब इसके पृथक् छपनेका प्रबंध किया गया। केवल गाथा और उनकी संस्कृतछाया देनेसे संस्कृत नहीं जाननेवालोंको कुछ लाभ नहीं होगा, ऐसा सोचकर इसमें केवल मूल गाथाओंका नम्बर दे दिया है। इससे जो लोग मूलग्रन्थ तथा संस्कृतटीकासे अर्थ समझना चाहेंगे, उन्हें लाभ होगा।

इस ग्रन्थकी टीकाओंमें प्रत्येक गाथाके प्रारंभमें शीर्षकके रूपमें छोटी २ सी उत्थानिकायें हैं। यदि वे इसके साथ लगा दी जातीं, तो बहुत लाभ होता। परन्तु ग्रन्थके कई फार्म छप चुकनेपर यह बात हमारे ध्यानमें आई, इस लिये फिर कुछ न कर सके। पाठकगण इसके लिये हमें क्षमा करेंगे। यदि कभी इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाश करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो यह त्रुटि पूर्ण कर दी जावेगी। परन्तु जैनसमाजमें ग्रन्थोंका इतना आदर ही कहां है, जो ऐसे ग्रन्थोंकी दूसरी आवृत्तिकी आशा की जावे।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, यह ग्रन्थ मूलग्रन्थका अनुवाद नहीं, किन्तु टीकाका पद्यानुवाद अथवा पद्यमयी टीका है। इसमें पंडित हेमराजजीकी वचनिकाका प्रायः अनुवाद किया गया है। कहीं २ तो वचनिकाका एक शब्द भी नहीं छोड़ा है। हमारी इस बातपर विश्वास करनेके लिये पाठकोंको तीसरे अधिकारकी २३ वीं गाथाकी कविता पंडित हेमराजजीकी वचनिकासे मिलाकर देखना चाहिये। वचनिकाके साथ इस अनुवादके दो चार स्थान मिलाकर दिखाने और उनकी आलोचना करने-

का हमारा विचार था, जिससे यह ज्ञात हो जाता कि कविवर वृन्दावनने मूल ग्रन्थके तथा टीकाओंके अभिप्रायोंको कहांतक समझकर यह अनुवाद किया है। परन्तु खेद है कि, अवकाश न मिलनेसे यह विचार मनका मनहीमें रह गया।

इस ग्रन्थमें शुद्ध निश्चयनयका कथन है। इसलिये इस ग्रन्थके स्वाध्याय करनेके अधिकारी वे ही लोग हैं, जो जैन-धर्मके निश्चय और व्यवहारमार्गके मर्मज्ञ हैं। व्यवहार और निश्चयका स्वरूप समझे विना इस ग्रन्थके पाठक अर्थका अनर्थ कर सकते हैं। और उनकी वही गति हो सकती है, जैसी समयसारके अध्ययनसे बनारसीदासजी की हुई थी। अत एव पाठकोंको चाहिये कि, नयमार्गका भलीभाँति विचार करके इसका स्वाध्याय करें, जिसमें आत्माका यथार्थ कल्याण हो।

इस ग्रन्थके संशोधनमें जहांतक हमसे हो सका है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं की है। तो भी भूल होना मनुष्यके लिये एक सामान्य बात है। इस लिये यदि कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो विशेषज्ञोंको सुधार करके पढ़ना चाहिये और हमपर क्षमा-भाव धारण करना चाहिये। अलमतिविस्तरेण विज्ञेषु—

सरस्वतीसेवक—

बम्बई।
१०—१०—०८

नाथूराम प्रेमी
देवरी (सागर) निवासी।

सूचीपत्र।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

ओंनमोऽनेकान्तवादिने जिनाय ।

*पीठिका ।

मंगलाचरण—षट्पद ।

सिद्धिसदन बुधिवदन, मदनमदकदन दहन रज ।
लब्धि लसन्त अनन्त, चारु गुनवंत संत अज ॥
दुविधि धरमविधि कथन, अविधि-तम-मथन-दिवाकर ।
विघ्न निघ्नकरतार, सकल-सुख-उदय-सुधाधर ॥
शतइन्द्रवृन्द पदवंद भव, दन्द फन्द निःकन्द कर ।
अरिशोष मोष-मग-पोष निर-दोष जयति जिनराज वर ॥ १ ॥

दोहा ।

सिद्धशिरोमनि सिद्धिप्रद, शुद्धचिदातम भूप ।
ज्ञानानंदसुभावमय, वंदन करहुं अनूप ॥ २ ॥
नमों देव अरहंतको, सहित अनंत चतुष्ट ।
दोषरहित जो मोषमग, भाषि करत सुख पुष्ट ॥ ३ ॥
आचारज उवझाय मुनि, तीनों सुगुरु मनाय ।
शिवमग साधत जतनजुत, वंदों मनवचकाय ॥ ४ ॥

---

* अथ श्रीप्रवचनसारपरमागम अध्यात्मविद्या श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूलप्राकृतगाथा ताकी संस्कृतटीका श्रीअमृतचन्द्रआचार्य करी ताकी देशभाषावचनिका पांडे हेमराजजीने रची है । ताहीके अनुसारसों वृन्दावन छन्द लिखै है । (प्रथमप्रति.)

सीमंधरको आदि जे, तीर्थंकर जिन वीस ।
अब विदेहमें हैं तिन्हैं, नमों समवसरतईश ॥ ५ ॥
वानी खिरत त्रिकाल जसु, सुनहिं सकल चहुँसंग ।
केई मुनिव्रत अनुव्रत, धारहिं पुलकितअंग ॥ ६ ॥
केई सहज सुभावमें, लीन होय मुनिवृंद ।
तीनों जोग निरोधिके, पावैं सहजानंद ॥ ७ ॥
वृषभादिक चौवीस जे, वर्तमान तीर्थेश ।
तिनको वंदत वृंद अब, मेटो कुमति कलेश ॥ ८ ॥
वृषभसेनको आदि जे, अंतम गौतमस्वामि ।
चौदहसै त्रेपन सुगुरु, गणधरदेव नमामि ॥ ९ ॥
अनेकान्तवानी नमों, वर्जित सकलविरोध ।
वस्तु जथारथ सिद्धि कर, डारत मनमल शोध ॥ १० ॥
जोई केवलज्ञान है, स्यादवाद है सोय ।
भेद प्रतच्छ परोच्छको, वरतत है भ्रम खोय ॥ ११ ॥
वस्तु अनंत धरममयी, स्यादवादके रूप ।
सो इकंत सों सधत नहिं, यों भाषी जिनभूप ॥ १२ ॥
जेते धरम तिते पृथक, गहें अपेच्छा सिद्ध ।
रहितअपेच्छा सधत नहिं, होत विरुद्ध असिद्ध ॥ १३ ॥
सहितअपेच्छा जो वचन, सो सब वस्तुसरूप ।
रहित अपेच्छा जो वचन, सो सब भ्रमतमकूप ॥ १४ ॥
अनेकांत एकांतकी, इतनी है पहिचान ।
एक पच्छ एकांत मत, अनेकांत सब थान ॥ १५ ॥

अनेकांतमतकी यहां, वरतै नहिं एकांत ।
अनेकांत हू है यहां, अनेकांत निरभ्रांत ॥ १६ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रमान है, नय हैं ताके अंग ।
साधनसाध्यदशाविषें, इनकी उठत तरंग ॥ १७ ॥
वस्तुरूप साधनविषें, करत प्रमान प्रवेश ।
नयके द्वारन वरनियत, ताके सकल विशेश ॥ १८ ॥
लच्छविषें जो वसत नित, लच्छन ताको नाम ।
जाके द्वार विलोकिये, लच्छ अवाध ललाम ॥ १९ ॥
इत्यादिक जे न्याय मग, नयनिच्छेपविधान ।
जिनवानीसों मिलत सव, सुपरमेदविज्ञान ॥ २० ॥
तातें जिनवानी नमों, अभिमतफलदातार ।
मो मनमंदिरमें सदा, करो प्रकाश उदार ॥ २१ ॥

द्रुमिलावृत्त । (आठ सगण)

सब वस्तु अनंत गुनातमको, जु यथारथरूप सुसिद्ध करै ।
परमान नयौर[1] निछेपदशा करि, मोहमहाभ्रमभाव हरै ॥
जसु आदि सु अंत विरोध नहीं, नित लच्छन स्यादसुवाद धरै ।
वह श्रीजिनशासनको भवि वृंद, अराधत प्रीति प्रतीति भरै॥२२॥

दोहा ।

पुनि मनमों परब्रह्ममय, पंच परमगुरु रूप ।
जासु ध्यानतें पाइये, सहजसुखामृतकूप ॥ २३ ॥

---

१ नय और ।

आदि अकार हकार सिर, रेफनाद जुतविंदु।
सिद्धवीज जपि सिद्धिप्रद, पूरन शारदइंदु॥ २४॥
माया वीज नमों सहित, पंचवरन अभिराम।
मध्य वीज अरहंत जसु, सुधासुधारसधाम॥ २५॥
निजघट-छीरसमुद्रमधि, मनअंबुज निरमाप।
वर्ग पत्र प्रति मध्य तसु, श्रीअरहंत सुथाप॥ २६॥
स्वासोस्वास निरोधिके, पूरनचंद्र समान,।
करो ध्यान भवि वृंद जहँ, झरत सुधा अमलान॥ २७॥
पुनि वाचक इहि वरनको, शुद्धब्रह्म अरहंत।
सहित अनंत चतुष्ट तिहिँ, ध्यावो थिरचित संत॥ २८॥
इमि दृढ़तर अभ्यास करि, पुनि तिहि सम निजरूप।
ध्यावो एकाकार थिर, तवहिँ होहु शिवभूप॥ २९॥
ये ही मंगलमूल जग, सर्वोत्तम हैं येह।
इनकी शरनागत रहो, उर धरि परम सनेह॥ ३०॥

सत्यार्थ मोक्षमार्गप्रवृत्तिका कथन।

श्रीमत वीर जिनिंद जब, कीन्हों शिवपुर गौन।
तब इत वासठ वरस लगि, खुल्यो रह्यो शिवभौन॥ ३१॥
गौतमस्वामी शिव गये, फेरि सुधर्मास्वाम।
पुनि जम्बूस्वामी लहीं, मुक्तिधाम अभिराम॥ ३२॥

१ अर्हं। २ ह्रीं।

ऐसे पंचमकालमें, बासठ वरस प्रमान ।
रह्यो केवलज्ञान इत, भ्रमतम-भंजन-भान ॥ ३३ ॥
ता पीछें श्रुतकेवली, भये पंच परधान ।
वरष एक शतके विषें, पूरन ज्ञाननिधान ॥ ३४ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, त्यासी वरषमझार ।
ग्यारअंग दशपूर्वधर, भये ग्यार अनगार ॥ ३५ ॥
वरष दोयसौ वीसमें, तिन पीछें मुनि पंच ।
भये इकादश अंगके, पाठी समकित संच ॥ ३६ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, ठारै वरष मझार ।
चार भये अनगार वर, एक अंगके धार ॥ ३७ ॥

श्रीजैनसिद्धान्तोंकी रचनासम्बन्धी कथन ।

कवित्तछन्द (३१ मात्रा)

भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलि, जब लग रहे यहां परधान ।
तब लग द्वादशांगशासनको, रह्यो प्ररूपन पूरनज्ञान ॥
तहँ निश्चय व्यवहाररूप जो, शिवमारगका सुखद विधान ।
सो परिवर्तत रह्यो जथारथ, यों भवि वृंद करो श्रद्धान ॥३८॥
तिस पीछे इत कालदोषतें, अंगज्ञानकी भई विछित्ति ।
तब कितेक मुनि शिथिलाचारी, भये किई तिन पृथक् प्रवृत्ति ॥
तिनसों श्वेताम्बर मत प्रगट्यो, रचे सूत्र विपरीत अहित्त ।
सो अब ताईं प्रगट देखियत, यह विरोधमारगकी रित्त ॥ ३९ ॥

दोहा ।

अब वरनों जिहि भाँति इत, रह्यो जथारथपंथ ।
श्रीजिनसूत्र प्रमाण करि, सुखददशा निरग्रंथ ॥ ४० ॥

चोपाई ।

जे जिनसूत्र सीस उर धारी । रहे आचरन करत उदारी ॥
तिनकी रही जथारथ चरिया । तथा प्ररूपन श्रुतअनुसरिया ,४१
तेई परम दिगंबर जानो । साँचे ग्रंथ पंथ ठहरानो ॥
वर्द्धमान शिवथान लहीते । छसौ तिरासी वरप विर्तीते ४२
दूजे भद्रबाहु आचारज । प्रगटे तिहि मगमें गुनआरज ॥
तिनकी परिपाटीमें भाई । किते वरप पीछे मुनिराई ॥ ४३ ॥
जिनसिद्धान्तनकी परिवृची । करी जाहि विधि सुनो सुवृची ॥
जैयशशिरचित वचनिका पावन । समयसारतें लिखों सुहावन४४

दोहा ।

एक भये धरसेन गुरु, तिनको सुनो बखान ।
जैसो ज्ञान रह्यो तिन्हें, श्रुतपथतें परमान ॥ ४५ ॥

करखाछन्द (मात्रा ३७)

अग्रणीपूर्वके, पाँचवें वस्तुका,
महाकरमप्रकृति, नाम चौथा ।
इस पराभृतका, ज्ञानतिनको रहा,
यहां लग अंगका, अंश तौ था ॥

[1] पं. जयचन्द्रजीकृत समयसारकी भाषाटीका ।

सो पराभृचको भूतबलि पुंष्परद,[1]
दोयमुनिको सुगुरुने पढ़ाया।
तास अनुसार, षटखंडके सूत्रको
बांधिके पुस्तकोंमें मढ़ाया ॥ ४६ ॥
फिर तिसी सूत्रको, और मुनिवृन्द पढि,
रची विस्तारसों तासु टीका।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु-
सिद्धान्तवृत्तान्तपरमान ठीका ॥
तिन हि सिद्धांतको, नेमिचंद्रादि-
आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता।
रचे गोमट्टसारादि बहु शास्त्र यह
प्रथमसिद्धांत-उतपत्ति-गीता ॥ ४७ ॥

दोहा।

जीव करम संजोगसे, जो संसृति परजाय।
तासु सुगुरु विस्तार करि, इहां रूप दरसाय ॥ ४८ ॥
गुनथानक अरु मार्गना, वरनन कीन्ह दयाल।
भविजनके उद्धारको, यह मग सुखद विशाल ॥४९॥

कवित्त छन्द। (३१ मात्रा)

पर्यायार्थिक नय प्रधान कर, यहां कथन कीन्हों गुरुदेव।
याहीको अशुद्धद्रव्यार्थिक, नय कहियत है यों लखि लेव ॥

१ पुष्पदन्त।

तथा अध्यातमीक भाषा करि, यह अशुद्ध निहचै नय भेव ।
तथा याहि विवहारहु कहिये, यह सब अनेकांतकी टेव ॥५०॥

द्वितीयसिद्धान्तोत्पत्ति । कवित्तछन्द ।

बहुरि एक गुणधर नामा मुनि, भये तिसी पथमें परधान ।
तिनको ज्ञानप्रवादपूर्वका, दशम वस्तुका त्रितिय विधान ॥
तिस प्राभृतका ज्ञान रहा तब, तिनसों नागहस्ति मुनि जान ।
तिन दोउनतें यतिनायक मुनि, तिस प्राभृतको पढ़ा निदान ५१
तब यतिनायक सुगुरु कृपाकर, तिसही प्राभृतके अनुसार ।
सूत्र चूर्णिकारूप रचा सो, छह हजारका शास्त्र उदार ॥
ताकी टीका समुद्धरन गुरु, रची सु बारह सहस विचार ।
यों आचारज परंपरातें, कुंदकुंद मुनि ताहि निहार ॥५२॥

दोहा ।

इस सिद्धान्तरहस्यके, कुंदकुंद गुरुदेव ।
रसिक भये ज्ञातामये, नमों तिन्हें वसुभेव ॥ ५३ ॥
यों दुतीय सिद्धांतकी, है उतपत्ति पुनीत ।
परिपाटी परमान करि, लिखी इहां निरनीत ॥ ५४ ॥

मनहरण (३१ वर्ण)

यामें ज्ञानको प्रधान करिके प्रगटपने,
शुद्ध दरवार्थीक नयको कथन है ।
अध्यातमवानी आतमाको अधिकार यातें,
याको शुद्ध निश्चैनय नाम हू नथन है ॥

तथा परमारथ हू नाम याको जथारथ,
इहां परजाय नय गौनता गथन है।
परवुद्धित्यागी जो सरूप शुद्धहीमें रमें,
सोई कर्म नाश शिव होत यों मथन है ॥ ५५ ॥

कवित्त ।

या प्रकार गुरुपरंपरातें, यह दुतीयसिद्धान्त प्रमान ।
शुद्ध सुनयके उपदेशक इत, शास्त्र विराजत हैं परधान ॥
समयसार पंचास्तिकाय श्री,-प्रवचनसार आदि सुमहान ।
कुंदकुंद गुरु मूल वखानें, टीका अमृतचन्द्रकृत जान ॥ ५६ ॥

कविप्रार्थना ।

तामें प्रवचनसारकी, वाँचि वचनिका मंजु ।
छन्दरूपरचना रचों, उर धरि गुरुपदकंजु ॥ ५७ ॥
कहँ परमागम अगम यह, कहँ मम मति अतिहीन ।
शशि सपरशके हेतु जिमि, शिशु कर ऊंचौ कीन ॥५८॥
तिमि मम निरख सुधीटता, हँसि कहि हैं परवीन ।
काक चहत पिक-मधुर-धुनि, मूक चहत कविकीन ॥५९॥

चौपाई ।

यह परमागम अगम बताई । मो मति अल्प रचत कविताई ।
सो लख हँसि कहिहैं मति धीरा। शिरिपसुमनकरि वेधत हीरा ६०

दोहा ।

बाल मराल चहै जथा, मन्दिरमेरु उठाव ।
बालवुद्धि भवि वृंद तिमि, करन चहत कविताव ॥ ६१ ॥

पूरव सुकविसहायतें, जिनशासनकी छाँहिं ।
हूं यह साहस कीन है, सुमरि सुगुरु मनमाँहिं ॥ ६२ ॥
मूलग्रन्थअनुसार जो, भाषा बनै प्रबंध ।
तौ उपमा सांची फबै, "सोना और सुगंध" ॥ ६३ ॥

चौपाई ।

मैं तो बहुत जतन चित राखी। रचि हौं छंद जिनागम साखी।
पै प्रमादतें लखि कहुं दूषन । शोधि शुद्ध कीजे गुनभूषन ॥६४॥

दोहा ।

सज्जन चाल मराल सम, औगुन तज गुन लेत ।
शारदवाहन[1] वारि तज, ज्यों पयपान करेत ॥ ६५ ॥

पद्पद ।

जब लगि वस्तु विचार करत, कवि काव्य करनहित ।
तब लगि विषयविकार रुकत, शुभध्यान रहत चित ॥
ऐसे निजहित जान, बहुरि जब जगमें व्यापत ।
तब जे बाँचहिं सुनहिं, तिन्हें है ज्ञान परापत ॥
यौं निज परको हित हेत लखि, वृंदावन उद्यम करत ।
परमागम प्रवचनसारकी, छंदबद्ध टीका धरत ॥ ६६ ॥

प्रवचनसारग्रन्थस्तुति ।

नय नय अनेकान्त दुतिधार । पय पय सुपरबोध करतार ।
रुप रुप करत सुधारस धार । जय जय सो श्रीप्रवचनसार ॥६७॥

---

1 हंस । 2 दूसरी प्रति में 'समामृत' पाठ है ।

अडिल्ल ।

द्वादशांगको सार जु सुविचार है ।
सो संजमजुत गहन होत तब सार है ॥
तासु हेत यह शासन परम उदार है ।
यातें प्रवचनसार नाम निरधार है ॥ ६८ ॥

मूलग्रन्थकर्त्ता श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकी स्तुति ।

मनहरण ।

जासके मुखारविंदतें प्रकाश भासवृंद,
स्यादवाद जैन वैन इंदु कुंदकुंदसे ।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुंदकुंदसे ॥
देत हैं अशीस शीस नाय इंद चंद जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुंदकुंदसे ।
शुद्धबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्धरिद्धिसिद्धिदा,
हुए, न हैं, न होहिंगे, मुनिंद कुंदकुंद से ॥ ६९ ॥

इति भूमिका।

रचौं आप परको हितकारी । भव्य जीव आनन्दविथारी ॥
प्रवचन जलधि अर्थ जल लैहैं । मति-भाजन-समान जल पैहैं ५

दोहा ।

अमृतचंदकृत संसकृत, टीका अगम अपार ।
तिन अनुसार कहौं कछू, सुगम अल्प विसतार ॥ ६ ॥

(१)

मतगयन्द ।

श्रीमत वीर जिनेश यही, तिनके पद वंदत हौं लवलाई ।
वन्दत वृन्द सुरिन्द जिन्हैं, असुरिन्द नरिन्द सदा हरषाई ॥
जो चउ घातिय कर्म महामल, धोइ अनन्त चतुष्टय पाई ।
धर्म दुधातमके करता प्रभु, तीरथरूप त्रिलोकके राई ॥ ७ ॥

चौपाई ।

बरतत है शासन अब जिनको । उचित प्रनाम प्रथम लिख तिनको
कुंदकुंद गुरु वन्दन कीना । स्यादवादविद्या परवीना ॥ ८ ॥

(२)

मनहरण ।

शेष तीरथेश वृषभादि आदितेईस औ,
सिद्ध सर्वे शुद्ध बुद्धिके करँडवत हैं ।
जिनको सँदैव सदभाव शुद्धसत्ताहीमें,
तारनतरनको तेई तरंडवत हैं ॥

आचारज उवझाय साधुके सुगुन ध्याय,
पंचाचारमाहिं वृन्द जे अखंडवत हैं।
येई पंच पर्म इष्ट देत हैं अभिष्ट शिष्ट,
तिनैं भक्तिभावसों हमारी दंडवत हैं ॥ ९ ॥

दोहा।

देव सिद्ध अरहंतको, निज सत्ता आधार।
सूर साधु उवझाय थित, पंचाचारमझार ॥ १० ॥
ज्ञान दरश चारित्र तप, वीरज परम पुनीत।
येही पंचाचारमें, विचरहिं श्रमण सनीत ॥ ११ ॥

(३)

अशोकपुष्पमंजरी।

पंच शून्य पंच चार योजन प्रमान जे,
मनुष्यक्षेत्रके विषैं जिनेश वर्तमान हैं।
तासके पदारविंद एक ही सु वार वृंद,
फेर भिन्न भिन्न वंदि भव्य-अब्ज-भान हैं ॥
वर्तमान भर्तमें अबै सुवर्तमान नाहिं,
श्रीविदेहथानमें सदैव राजमान हैं।
द्वैत औ अद्वैतरूप वंदना करौं त्रिकाल,
सो दयाल देत रिद्धि सिद्धिके निधान हैं ॥१२॥

दोहा।

आठौं अंग नवाइकै, भूमें दंडाकार।
मुखकर सुजस उचारिये, सो वंदन विवहार ॥ १३ ॥

निज चैतन्य सुभावकरि, तिनसों ह्वै लवलीन ।
सो अद्वैत सुवन्दना, भेदरहित परवीन ॥ १४ ॥

(४)

माधवी ।

करि वंदन देव जिनिंदनको, ध्रुव सिद्ध विशुद्धनको उर ध्यावों ।
तिमि सर्व गनिंद मुनिंद नमों, उदघाट कपाटक ठाट मनावों ॥
मुनि वृंद जिते नरलोकविषैं, अभिनंदित ह्वै तिनके गुन गावों ।
यह पंच पदस्थ प्रशस्त समस्त, तिन्हैं निज मस्तक हस्त लगावों १५

(५)

इनके विसरामको धाम लसै, अति उज्वल दर्शनज्ञानप्रधाना ।
जहँ शुद्धुपयोग सुधारस वृंद, समाधि समृद्धिकी वृद्धि वसाना ॥
तिहिको अवलंबि गहों समता, भवताप मिटावन मेघ महाना ।
जिहितें निरवान सुथान मिलै, अमलान अनूपम चेतन वाना १६

(६)

चौबोला ।

जो जन श्री जिनराजकथित नित, चित्तविषै चारित्त धरै ।
सम्यकदर्शनज्ञान जहां, अमलान विराजित जोति भरै ॥
सो सुर इंद वृंद सुख भोगै, असुर इंदको विभव वरै ।
होय नरिंद सिद्धपद पावै, फेरि न जगमें जन्म धरै ॥ १७ ॥

(७)

निहचै निज सुभावमें थिरता, तिहि चारितकहँ धरम कहै ।
सोई धर्म धर्म समतामय, यों सर्वज्ञ कृपाल महै ॥

जामें मोह क्षोभ नहिं व्यापत, चिद्विलास दुति वृंद गहै ।
सो परिनामसहित आतमको, शाम नाम अभिराम अहै॥१८॥

दोहा।

चिदानन्द चिद्रूपको, परम धरम शमभाव ।
जामें मोह न राग रिस, अमल अचल थिर भाव ॥ १९॥
सोई विमल चरित्र है, शुद्ध सिद्धपदहेत ।
शामसरूपी आतमा, भविक वृंद लखि लेत ॥ २० ॥

(८)

सवैयाछंद ।

जब जिहि परनति दरव परनमत, तब तासों तन्मय तिहि काल ।
श्रीसर्वज्ञकथित यह मारग, मथित गुरू गनधर गुनमाल ॥
तातैं धरम सभाव परिनवत, आतमहूको धरम सम्हाल ।
धरमी धरम एकता नयकी, इहां अपेक्षा वृंद विशाल॥२१॥

दोहा।

वीतराग चारित्र है, परम धरम निजरूप ।
ताके धारत जीवको, धर्म कह्यो जिनभूप ॥ २२ ॥
एक एक धरमीविषैं, वसत अनन्ते धर्म ।
मिलत न काहूसों कोई, यह सुभावगति पर्म ॥ २३ ॥
जब धरमी जिहि धरमकी, परनवत जुत निज शक्त ।
तब तासों तन्मय तहां, होत शक्ति करि व्यक्त ॥ २४॥

तातें आतमराम जब, धरै शुद्ध निज धर्म ।
तब ताहूको नाम गुरु, कह्यो धर्म तजि भर्म ॥ २५ ॥
अयमय गोला अगनितैं, काल होत जिहि काल ।
अनल ताहि तब सब कहत, देखो बुद्धि विशाल ॥ २६ ॥
तैसे जिन जिन धर्म करि, प्रणवहि वस्त समस्त ।
तन्मय तासौं होहिं तब, यह सुभाव अनअस्त ॥ २७ ॥
अग्नि पृथक गोला पृथक, यह सजोगसंबंध ।
त्यों धर्मी अरु धर्ममें, भेद नहीं है संध ॥ २८ ॥
सिख संबोधनको सुगुरु, देत विदित दृष्टांत ।
एकदेश सो व्यापता, सुनौं भविक तजि भ्रांत ॥ २९ ॥
धर्मी धर्म दुहूनको, तादात्मक संबंध ।
है प्रदेश प्रति एकता, सहज सुभाव असंध ॥ ३० ॥

(९)

षट्पद ।

जब यह मनवत जीव, दयादिक शुभपयोग मय ।
अथवा अशुभ स्वभाव गहत, जहँ विषय भोग लय ॥
किंवा शुद्धुपयोगमयी, जहँ सुधा बहावत ।
जुत परिनामिक भाव, नाम तहँ तैसो पावत ॥
जिमि सेत फटिक वश झांकके, झांक वृन्द रंगत गहत ।
तजि झांक झांक जब झाकियत, तब अटांक सदपद महत ३१

१ लोहमयी ।

(१०)

सोरठा ।

दरवन विन परिनाम, परनति दरव विना नहीं ।
दरव गुनपरजधाम, सहित अस्ति जिनवर कही ॥ ३२ ॥

मनहरण ।

केई मूढ़मती कहैं द्रव्यमें न गुन होत,
द्रव्य और गुननको न्यारो न्यारो थान है ।
गुनके गहनतें कहावै द्रव्य गुनी नाम,
जैसें दंड धारै तब दंडी परधान है ॥
तासौं स्यादवादी कहै यह तो विरोध वात,
विना गुन द्रव्य जैसे खरको विषान है ।
बिन परिनाम तैंने द्रव्य पहिचानै कैसे,
परिनामहूको कहा थान विद्यमान है ॥ ३३ ॥
देखो एक गोरस त्रिविधि परिनाम धरै,
दूध दधि घृतमें ही ताको विस्तार है ।
तैसे ही दरव परिनाम विना रहै नाहिं,
परिनामहूको वृन्द दरव अधार है ॥
गुनपरजायवंत द्रव्य भगवंत कही,
सुभाव सुभावी ऐसे गही गनधार है ।
जैसे हेम द्रव्य गुन गौरव सुपीततादि,
परजाय कुंडलादिमई निरधार है ॥ ३४ ॥

जैसे जो दरव ताको तैसो परिनाम होत,
देखो भेदज्ञानसों न परौ दौर धूपमें ।
तातैं जब आतमा प्रनवै शुभ वा अशुभ,
अथवा विशुद्धभाव सहज सरूपमें ॥
तहां तिन भावनिसों तदाकार होत तब,
व्याप्य अरु व्यापककी यही धर्म रूपमें ।
कुंदकुंद स्वामीके वचन कुंद इंदुसे हैं,
धरो उर वृन्द तो न परौ भवकूपमें ॥ ३५ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

धर्म सरूप जबै प्रनवै यह, आतम आप अध्यातम ध्याता ।
शुद्धुपयोग दशा गहिकै, सु लहै निरवान सुखामृत स्याता ॥
होत जबै शुभरूपपयोग, तबै सुरगादि विभौ मिलि जाता ।
आपहि है अपने परिनामनिको फल भोगनहार विधाता॥३६॥

मोतीदाम ।

जबै जिय धारत चारित शुद्ध । तबै पद पावत सिद्ध विशुद्ध ।
सराग चरित्त धरै जब चित्त । लहै सुरगादिविषैं वर वित्त ३७

दोहा ।

तातैं शुद्धुपयोगके, जे सन्मुख हैं जीव ।
तिनको शुभ चारित्रमहँ, रमनो नाहिं सदीव ॥ ३८ ॥

(१२)

माधवी ।

अनुभोदयतें यह आतमराम, अनंत कलेश निरंतर पायो ।
कुमनुष्य तथा तिरजंचनिमें, बहुधा नरकानलमें पचि आयो ॥
नहिं पार मिल्यो परिवर्त्तनको, इहि भांति अनादि कुकाल गमायो।
अब आतमधर्म गह्यो सुख कन्द, जिनिंद जथा भवि वृन्द बतायो॥

दोहा ।

महा दुःखको बीज है, अशुभरूप परिनाम ।
याके उदय अनन्त दुख, भुगते आतमराम ॥ ४० ॥
दारिद दुख नर नीच पद, इत्यादिक फल देत ।
नारकगति तिरजंचगति, याको सहज निकेत ॥ ४१ ॥
तातें तजिये सर्वथा, अव्रत विषय कषाय ।
याके उदय न बनि सकत, एकौ धर्म उपाय ॥ ४२ ॥
शुभ परिनामनके विषैं, है विवहारिक धर्म ।
दया दान पूजादि बहु, तप संयम शुभकर्म ॥ ४३ ॥
ताहि कथंचित धारिये, लखिये आतमरूप ।
शिवमगको सहकार यह, यों भाषी जिनभूप ॥ ४४ ॥

(१३)

मनहरण ।

शुद्ध उपयोग सिद्ध भयो हैं प्रसिद्ध जिन्हें,
ऐसो सिद्ध अरहंतनके गाइयतु है ।

आतम सुभावतैं उपजो साहजीक सुख,
सबतैं अधिक अनाकुल पाइयतु है ॥
अच्छ पच्छतैं विलच्छ विषैसों रहित स्वच्छ,
उपमाकी गच्छसों अलच्छ ध्याइयतु है ।
निराबाध हैं अनन्त एकरस रहैं संत,
ऐसे शिवकंतकी शरन जाइयतु है ॥ ४५ ॥

(१४)

शुद्धउपयोग जुक्त जती जे विराजत हैं,
सुनो तासु लच्छन विचच्छन बुधारसी ।
भलीभांति जानत जथारथ पदारथको,
तथा श्रुतसिंधु मथि धारत सुधारसी ॥
संजमसों मंडित तपोनिधान पंडित हैं,
रागदोष खंडिके विहंडत मुधारसी ।
जाके सुख दुखमें न हरष विषाद वृन्द
सोई धर्मधर्मधार धीर मो उधारसी ॥ ४६ ॥

दोहा ।

जो मुनि सुपरविभेद धरि, करे शुद्ध सरधान ।
निज सरूप आचरनमें, गाड़े अचल निशान ॥ ४७ ॥
सकल सूत्र सिद्धान्तको, भलीभांति रस लेत ।
तप संजम साधै सुधी, रागदोष तजि देत ॥ ४८ ॥
जीवन मरनविषै नहीं, जाके हरष विषाद ।
शुद्धपयोगी साधु सो, रहित सकल अपवाद ॥ ४९ ॥

(१५)

मत्तगयंद।

जो उपयोग विशुद्ध विभाकर, मंडित है चिन्मूरतराई।
सो वह केवलज्ञानधनी, सब ज्ञेयके पार ततच्छन जाई॥
घाति चतुष्टय तास तहाँ, स्वयमेव विनाश लहैं दुखदाई।
शुद्धपयोग परापतिकी, महिमा यह वृंद मुनिंदन गाई॥५०॥

षट्पद।

जिस आतमके परम सुद्ध, उपयोग सिद्ध हुव।
तिसके जुग आवरन, मोहमल विघन नास धुव॥
सकल ज्ञेयके पार जात सो, आप ततच्छन।
ज्ञान फुरन्त अनन्त, सोइ अरहंत सुलच्छन॥
महिमा महान अमलान नव, केवल लाभ सुधाकरन।
शिवथानदान भगवानके, वृंदावन वंदत चरन॥ ५१॥

(१६)

मनहरण।

ताही भाँति विमल भये जे आप चिदानन्द,
तासको स्वयंभू नाम ऐसो दरसायो है।
प्रापत भये अनन्त ज्ञानादि स्वभाव गुन,
आपही ते आपमाहिँ सुधा बरसायो है॥
सोई सरवज्ञ तिहूँकालके समस्त वस्तु,
हस्तरेखसे प्रशस्त लखै सरसायो है।

ताहीके पदारविंद देव इंद नागइंद
मानुषेंद वृंद वंदि पूज हरषायो है ॥ ५२ ॥

षट्कारकनिरूपण । दोहा ।

निजसरूप प्रापतिविषें, पर सहाय नहिं कोय ।
षटप्रकार कारकनिमें, यह आतम थिर होय ॥ ५३ ॥
तासु नाम लक्षण सुगम, कहौं जथारथ रूप ।
जैनवैनकी रीतिसौं, ज्यों गुरुकथित अनूप ॥ ५४ ॥
करता करम करन तथा, संमदान उर आन ।
अपादान पुनि अधिकरन, ये षट्कारक मान ॥ ५५ ॥

गीतिका ।

स्वाधीन होइ करै सोई, करतार ताको जानिये ।
करतारकी करतूतिको, कहि करम कारक मानिये ॥
जाकरि करमको करत करता, करन ताको नाम है ।
यह करम जाको देत संपरदानसो सरनाम है ॥ ५६ ॥
पूरव अवस्था त्याग कर जो, होत नूतन काज है ।
सो जानिये पंचमों कारक अपादान समाज है ॥
जाके अधार बनै करम अधिकरन सोई ठीक है ।
यह नाम लच्छन है विचच्छन छहोंको तहकीक है ॥५७

भुजंगी ।

जहां औरकी मान नैमित्तता । करै है सुधी काजकी सिद्धता
तहां है असद्भूतुपाचारता । कोई द्रव्य काहूको ना धारता॥५८॥

मनहरण ।

जैसे कुंभकार करतार घट कर्म करै,
दंडचक्र आदितके साधन करन है ।
जब घट कर्मको बनाय जलहेत देत,
तहाँ संप्रदान नाम कारक बरन है ॥
पूरव अवस्था मृतपिंडको विनाश भये,
घट निरमये अपादानता धरन है ।
भूमिके अधार घट कर्मको बनावत है,
तहां अधिकर्न होत संशय हरन है ॥ ५९ ॥

दोहा ।

यामें करतादिक पृथक्, यातें यह व्यवहार ।
सम्यकबुद्धि पसारकें, समझ लेहु श्रुतिद्वार ॥ ६० ॥

लक्ष्मीधरा ।

आप ही आपतें आपको साधता,
औरकी नाहिं, आधार आराधता ।
नाम निश्चै यही सत्य है सासता,
स्यादवादी विना कौनको भासता ? ॥ ६१ ॥

षट्पद ।

ज्यों माटी करतार, सहज सत्ता प्रमानमय ।
अपने घट परिनाम, करमको आप करत हय ॥
आपहि अपने कुंभ करनको, साधन हो है ।
आप होय घट कर्म, आपको देत सु सोहै ॥

आप ही अवस्था पूर्वकी, त्यागि होत घटरूप घट ।
अपने अधार करि आप ही, होत प्रगट घटरूप ठट ॥ ६२ ॥
सहज सकति स्वाधीन, सहित करतार जीव ध्रुव ।
करत शुद्ध सरवंग, आपको यही करम हुव ॥
निज परनति करि करत, आपको शुद्ध करन तित ।
सो गुन आपहि आप, देत यह संप्रदान हित ॥
तजि समल विमल आपहि धरत, अपादान तब उर धरन ।
करि निजाधार निज गुन अमल, तहां आप सो अधिकरन॥६३

चौबोला ।

जब संसार दशा तज चेतन, शुद्धपयोग सभाव गहै ।
तब आप हि षटकारकमय है, केवलपद परकाश लहै ॥
तहां स्वयंभू आप कहावत, सकल शक्ति निज व्यक्त जहै ।
चिद्विलास आनन्दकन्द पद, वंदि वृन्द दुखद्वंद दहै ॥६४॥

(१७)

इमिला ।

तिस ही अमलान चिदातमके, निहचै करि वर्तत है सु यही ।
उतपाद भयो जो विशुद्ध दशा, तिसको न विनाश लहै कब ही॥
अरु भंग भये परसंगिक भावनिको उतपाद नहीं जो नहीं ।
पुनि है तिनके ध्रुव वै उतपाद, सदीव सुभाविकमाहिं सही ६५

दोहा ।

शुद्धपयोग अराधिके, सिद्ध भये सरवंग ।
जे अनन्त ज्ञानादिगुन, तिनको कबहुँ न भंग ॥ ६६ ॥

अरु अनादिके करममल, तिनको भयो विनाश ।
सो फिर कबहुं न ऊपजैं, जहां शुद्ध परकाश ॥ ६७ ॥
पुनि ताही चिद्रूपके, वर्तत है यह धर्म ।
उपजन विनशन ध्रुव रहन, साहजीक पद पर्म ॥ ६८ ॥
द्रव्यदृष्टिकर ध्रौव्य है, उपजत विनशत पर्ज ।
षट्गुनहानरु वृद्धि करि, वरनत श्रुति भ्रम वर्ज ॥ ६९ ॥

(१८)

मनहरण ।

जेते हैं पदारथके जात विद्यमान तेते,
उतपाद व्यय भाव धरें सदाकाल है ।
अर्थ परजायमें कि विंजन परजमाहिं,
अथवा विभाव कै सभाव पर्जपाल है ॥
याहीके अधार निराधार निज सत्ताधार,
निजाधार निराबाध द्रव्य गुनमाल है ।
कुंदकुंद इंदुके वचन अमी बूंद पियो,
जाको इंद-चंद-वृंद वंदत त्रिकाल है ॥ ७० ॥

किरीट ।

जो जगमें सब वस्तु विराजत, सो उतपादरु व्यै ध्रुव धारक ।
हैं परजाय सुभावमई कि विभाव कि अर्थ कि विंजन कारक ॥
है इनहीकरकें तिनकी, तिहुँकाल विषैं सदभाव उदारक ।
या विन द्रव्य सधै न किसी विधि, यौं श्रुतिसिंधु मथी गनधारक ॥

मत्तगयन्द ।

कुंडलरूप भयो जब कंचन, कंकनता तब ही तज दीनों ।
ध्रौव्य दुहूमहँ आपहि है, गुन गौरव पीत सचिकन लीनों ॥
त्यों सब द्रव्य सदा प्रनवै, परजायविषैं गुन संग धरीनो ।
तीन विहीन नहीं कोउ वस्तु, यही उनको सदभाव प्रवीनो ७२

मनहरण ।

धरम अधरम अकाश काल चारों द्रव्य,
सहज सुभाव परजायमाहिं रहे हैं ।
षटगुनी हानि वृद्धि करें समै समै माहिं,
अगुरुलघुगुनके द्वार ऐसे कहे हैं ।
गतिथिति अवकाश वर्तना गुन निवास,
चारोंमें यथोचित स्वसत्ताही को गहे हैं ।
जीव पुदगलमें विराजें दोऊ परजाय,
विभाव तथा सुभाव जब जैसो लहे हैं ॥ ७३ ॥

दोहा ।

ज्यों मानुष तन त्यागिके, उपजत सुरपुर जीव ।
दुहूँ दशामें आप ध्रुव, इमि तिहु सधत सदीव ॥ ७४ ॥
अथवा सिद्धदशाविषैं, ऐसे साधी साध ।
समल दशा तजि अमल हुव, यह ध्रुव जीव अबाध ॥ ७५ ॥
अथवा ज्ञानदर्शमें, दरसि रहै सब ज्ञेय ।
ज्ञेयाकार सुज्ञान तहँ, होत प्रतच्छ प्रमेय ॥ ७६ ॥

तिन ज्ञेयनकी त्रिविध गति, जिह जिह भाँति सुहोत ।
तिहि २ भाँति सुज्ञान वह, प्रनवत सहज उदोत ॥ ७७ ॥
याही भांति प्ररूपना, सिद्ध दशाके माँह ।
उतपतव्ययध्रुवकी सधत, अनेकांतकी छाँह ॥ ७८ ॥
षटगुनि हानिरु वृद्धिकी, जा विधि उठत तरंग ।
सहज सुभाविक भावमें, सोऊ सधत अभंग ॥ ७९ ॥
उपजन विनशन ध्रौव्यके, विना द्रव्य नहिं होय ।
साधी गुरु सिद्धान्तमें, बाधी तहाँ न कोय ॥ ८० ॥

प्रश्न— शिखरिणी

कहो उत्पादादी त्रिविधिकर अस्तित्व तुमने ।
सुनी मैंने नीके उठत तब शंका मुझ मने ॥
त्रिधा काहे भाषो, ध्रुवहि करिके क्यों नहिं कहो ।
कहा यातें नाहीं सधत? सब वर्ते मुनि महो ॥ ८१ ॥

उत्तर— अनङ्गशेखर। (दंडक ३२ वर्ण)

पदार्थको जु ध्रौव्य रूप एक पच्छ मानिये,
तु तासुमें प्रतच्छ दोष लच्छ लच्छ जानिये ।
कुटस्थ रूप राजतौ प्रवृत्त त्यागि भाजतौ,
विराजतौ सदैव एक रूप ही बखानिये ॥
सु तौ नहीं विलोकिये विलोकिये त्रिधातमीक,
एक वस्तुकी दशा अनेक होत मानिये ।
सुवर्ण कुंडलादि होत दूधतें घृतादि जोत,
मृत्तिका घटादिको तथैव सो प्रमानिये ॥ ८२ ॥

दोहा ।

दरवमाहिं दो शक्ति हैं, भावी गुन परजाय ।
इन विन कवहुँ न सधि सकत, कीजे कोटि उपाय ॥८३॥
नित्य तदातमरूपमय, ताको गुन है नाम ।
जो क्रमकरि वरतै दशा, सो परजाय ललाम ॥ ८४ ॥
कहीं कहीं है द्रव्यकी, दोइभाँति परजाय ।
नित्यभूत तद्रूप इक, दुतिय अनित्य बताय ॥ ८५ ॥
नित्यभूतको गुन कहैं, दुतिय अनित्य विभेद ।
ताहि कही परजाय गुरु, यह मत प्रवल अछेद ॥ ८६ ॥
तिन परजायनकरि दरव, उपजत विनशत मान ।
ध्रौव्यरूप निजगुणसहित, दुहू दशामें जान ॥ ८७ ॥
याही कर सद्भाव तसु, यह है सहज सभाव ।
यहां तर्क लागै नहीं, वृथा न गाल बजाव ॥ ८८ ॥

उक्तं च देवागमे–चौपाई ।

श्रीगुरु त्रिविधि तत्त्वको साधत । प्रगट दिखावत हैं निरवाधत ॥
घट परजाय धरै जो सोना । ताहि नाशि करि मुकुट सु होना ॥८९
तहां कुंभ सो जो रुचि रेखी । ताके होत विषाद विशेखी ॥
मौलि बनैतें जाके प्रीती । ताके हरष होत निरनीती ॥ ९० ॥
जाके सोनाहीसों काजा । सो दुहुमें मध्यस्थ विराजा ॥
तव कहु दरव त्रिविधि नहिं कैसे ? प्रगट विलोक हेतु जुत ऐसे९१
गोरस एक त्रिविधि परनवै । दूध दधी घृत जग वरनवै ॥
पनवन सकति नहीं तामाहिं । तव किहि भांति त्रिविधि हो जाहिं

देखो! प्रथम दूध रस रहा। दधि होते गुन औरै गहा।
घृत होते फिर औरहि भयो। स्वाद भेद गुन औरहि लयो॥९३॥
दूधव्रती दधि घृतको खाता। दधिव्रती घृत दूध लहाता॥
घृतव्रतधारी पय दधि गहै। पृथक तत्त्व तब क्यों नहिं अहै॥९४॥
एकै रूप जु गोरस होतो। तीन दशा तब किमि उद्दोतो?॥
तातैं तत्त्व त्रिधातम सही। न्यायसिंधु मथि श्रीगुरु कही॥९५॥

(१९)

मत्तगयन्द।

जो चहु घातिय कर्म विनाशि, अतिंद्रियरूप भयो अमलाना।
ताहि अनन्त जगे वर बीजरु, तेज अनन्त अपार महाना॥
सो वह आपहि ज्ञान सुखादि, सरूपमयी प्रनयौ भगवाना।
जासु विनाश नहीं कबहीं, गुन वृंद चिदानँदकंद प्रधाना॥९६॥

(२०)

केवलज्ञानधनी भगवानकी, रीति प्रधान अलौकिक गाई।
देह धरें तउ देहज दुःख, सुखादि तिन्हें नहिं होत कदाई॥
तातैं अतिंद्रिय रूप भये सुख, छायक वृंद सुभायक पाई।
तातैं तिन्हें न विकार कछू, अविकार अनन्तप्रकार बताई॥९७॥

दोहा।

सकल घात संघात हत, प्रगट्यो बीज अनन्त।
परम अतिंद्रिय सुखमयी, जाको कबहुँ न अन्त॥ ९८॥
ताको जे मतिमंद शठ, भाषैं कवलाहार।
धिग है तिनकी समुझिको, बार बार धिक्कार॥ ९९॥

गुनथानक छट्टम विषैं, होत अहार विहार ।
ताके ऊपर ध्यानगत, तहां न मुक्ति लगार ॥ १०० ॥
जे तेरम गुनथानमें, अचल चहूँ अरि जार ।
छायकलब्धिस्वभाव जहँ, तहँ किमि कवलाहार ! ॥१०१॥
क्षुधा त्रषा बाधा करै, इन्द्री पीड़ैं मान ।
यह तो गति संसारमें, जगजीवनकी जान ॥ १०२ ॥
जहां अतिंद्रिय सुखसहित, चिदानन्द चिद्रूप ।
तहां कहां बाधा जहां, प्रगटी शकति अनूप ॥ १०३ ॥
मोह करम विन वेदनी, निरविष विषधर जेम ।
जरी जेवरी बलरहित, अबल अघाती तेम ॥ १०४ ॥
सकत अनंतानंत जस, प्रगट भयो निरबाध ।
तँह चेतन तनसहितकहँ, लगत न तनिक उपाध ॥१०५॥
निजानन्द रसपान तहँ, चिदानन्द कहँ होत ।
नोतनकरमसुवरगना, तिनकरि काय उदोत ॥ १०६ ॥
कर्मवरगना प्रति समय, पूर्वबंध संजोग ।
आय लगहिं पुनि झरपरहिं, टिकहिं न विन उपयोग१०७
निबिड़ मोहनी विघन अरु, ज्ञान दर्शनावर्न ।
इनहिं नासि निर्मल भये, अमल अचल पद धर्न ॥१०८
ते सांचे सर्वज्ञ हैं, तेई आप्त प्रधान ।
तिनके वचन प्रमान हैं, भवि-उर-भ्रम-तम भान ॥१०९॥

(२१)

षट्पद।

ज्ञानरूप परिनये, आपु जे केवलज्ञानी।
तिनके सकलप्रतच्छ, द्रव्य गुन-परज-प्रमानी॥
सो नहिं जानहिं ताहि, अवग्रह आदि क्रियाकर।
जातें यह छदमस्थ, ज्ञानकी रीति प्रगट तर॥
निहचै सो श्रीभगवानके, सकल आवरन नाश हुव।
सर्वावभास निज ज्ञानमें, लोकालोक प्रतच्छ ध्रुव॥ ११०॥

(२२)

षट्पद।

इस भगवान महान, केवलज्ञान धनीकहँ।
रह्यो न कछू परोक्ष, वस्तुके जानपनेमहँ॥
जातें इन्द्रियरहित, अतीन्द्रियरूप विराजै।
अरु सरवंग समस्त, अच्छके गुन छवि छाजै॥
स्वयमेव हि ज्ञान सुभावकी, प्रापति है जिनके विमल।
तिनको प्रतच्छ तिहुँ लोकके, वस्तुवृन्द झलकहिं सकल १११

(२३)

मनहरण।

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा विराजमान,
जैसे हेम गुन पीत गौरवादिको धरै।
सोई ज्ञानगुन ज्ञेयके प्रमान भाषै जथा,
अग्नि गुन उष्ण जितौ ईंधन तितौ जरै॥

ज्ञेयको प्रमान वृंद, लोक औ अलोक सर्व,
तासुको विलोकत प्रतच्छरेखा ज्यों करै।
ताहीतें सरवगति ज्ञानको सुसिद्ध करी,
स्वामीके वचन अनेकान्त रससों भरे ॥ ११२ ॥

(२४-२५)

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा न मानत हैं,
ऐसे जो अजान इस लोकमें कुमती हैं।
ताके मतमाहिं गुन ज्ञानतें अधिक हीन,
होत ध्रुवरूप वह आतमाकी गती है ॥
जे तो ज्ञानहीन ते तो जड़के समान भयो,
अचेतन तामें कहां ज्ञायक-शकती है।
अधिक वखाने तो प्रमाने कैसे ज्ञान विना,
ऐसे परतच्छ स्वामी दोनों पच्छ हती हैं ॥ ११३॥

दोहा।

जथा अगनि गुन उष्णतें, हीन अधिक नहिं होत।
तथा आतमा ज्ञान गुन, सहित बराबर जोत ॥ ११४ ॥
अन्वय अरु व्यतिरेकता, ज्ञान आतमामाहिं।
विना ज्ञान आतम नहीं, आतम विनु सो नाहिं ॥११५॥
जहां जहां है आतमा, तहां तहां है ज्ञान।
जहां जहां है ज्ञान गुन, तहां तहां जिय मान ॥ ११६ ॥
तातें हीनाधिक नहीं, ज्ञान सुगुनतें जीव।
हीनाधिकके मानतें, बाधा लगत सदीव ॥ ११७ ॥

कछु प्रदेशपै ज्ञान है, कछु प्रदेशपै नाहिं ।
यों मानत जड़ चेतना, दोनों सम ह्वै जाहिं ॥ ११८ ॥
तब किमि शुद्ध समाधिमें, निरविकल्प थिर होय ।
द्विधा दशा किमि अनुभवै, किहि विधि शिवसुख होय ११९
तातें दृष्टि प्रमानतें; बाधित है यह पच्छ ।
साधित है निरबाध ध्रुव, जीव ज्ञान यह स्वच्छ ॥१२०॥

(२६)

गीतिका ।

सर्वगत भगवानको, इस हेतुसों गुरु कहत हैं ।
तास ज्ञान प्रकाशमें, सब जगत दरसत रहत हैं ॥
गुन ज्ञानमय है रूप जिनका, ज्ञेय ज्ञानविषैं मथा ।
तासतें सर्वज्ञ सबव्यापक, जथारथ यों कथा ॥१२१॥

षट्पद ।

शुचि दरपनमें जथा, प्रगट घट पट प्रतिभासत ।
मुकुर जात नहिं तहां, तैान नहिं मुकुर अवासत ॥
तथा शुद्ध परकाश, ज्ञान सब ज्ञेयमांहिं गत ।
ज्ञेय तहां थित करहिं, यह उपचार मानियत ॥
वह ज्ञान धरम है जीवको, धरमी धरम सु एक अत ।
या नयतें श्री सर्वज्ञको, कहें जथारथ सर्वगत ॥ १२२ ॥

दोहा ।

एक ब्रह्म सब जगतमें, व्यापि रह्यौ सरवंग ।
अपनेही परदेशकरि, नानारंग उमंग ॥ १२३ ॥

ऐसी जिनके कुमतिकी, उपज रही है पच्छ ।
तिनको मत शतखंडकरि, दूषत हैं परतच्छ ॥ १२४ ॥
निज परदेशनिकरि जबै, जगमें व्यापौ आप ।
तब वह अमल समल भयौ, यह तो अमिल मिलाप ॥१२५॥
कछुक अमल कछु समल है, तौ भी बनै न बात ॥
एक वस्तुमें दो दशा, क्यों करि चित्त समात ॥ १२६ ॥
तातें ज्ञान प्रकाशमें, ज्ञेय सकल झलकंत ॥
सो निजज्ञानसुभावमय, आप प्रगट भगवंत ॥ १२७ ॥
यातें श्रीसरवज्ञको, कह्यो सर्वगत नाम ।
अन्तरछेदी ज्ञानमय, जगव्यापक जगधाम ॥ १२८ ॥
यातें जो विपरीत मत, ते सब सकल असिद्ध ।
स्यादवादतें सर्वगत, श्रीअरहंत सु सिद्ध ॥ १२९ ॥

(२७)

मनहर ।

जोई ज्ञान गुन सोई आतमा बखाने जातें,
दोऊमें कथंचित न भेद ठहरात है ।
आतमाविना न और द्रव्यमाहिं ज्ञान लसै,
ज्ञान गुन जीवमें ही दीसै जहरात है ॥
तथा जैसे ज्ञान गुन जीवमें विराजै तैसे,
और हू अनन्त गुन तामें गहरात है ।
गुनको समूह दव्व अपेक्षासों सिद्ध सव्व,
ऐसो स्यादवादको पताका फहरात है ॥ १३० ॥

द्रुमिला।

गुणज्ञानहिंको जदि जीव कहैं, तदि और अनन्त जिते गुन हैं।
तिनको तव कौन अधार बने, निरधारविना कहु को सुन है?॥
गुनमाहिं नहीं गुन और वसैं, श्रुति साधत श्रीजिनकी धुन है।
तिससें गुन पर्ज अनंतमयी, चिनमूरति द्रव्य सु आपुन है॥

(२८)

षट्पद।

ज्ञानी अपने ज्ञानभाव,—हीमाहिं विराजै।
ज्ञेयरूप सव वस्तु, आपने थलमें छाजै॥
मिलिकर बरतें नाहिं, परस्पर ज्ञेयरु ज्ञानी।
ऐसी ही मर्याद, वस्तुकी बनी प्रमानी॥
जिमि रूपीदरवनि को प्रगट, देखत नयन प्रमानकर।
तिमि तहां जथारथ जानिके, वृन्दावन परतीति धर १३२

(२९)

मनहर।

ज्ञानी ना प्रदेशतें प्रवेश करै ज्ञेयमाहिं,
तथा व्यवहारसे प्रवेश हू सो करै है।
अच्छातीत ज्ञानतें समस्त वस्तु देखै जानें,
पाथरकी रेख ज्यों न संग परिहरै है॥
जैसे नैन रूपक पदारथ विलोकै वृन्द,
तैसे शुद्ध ज्ञानसों अमल छटा भरै है।

मानों सर्व ज्ञेयको उखारिके निगलि जात,
शक्त व्यक्त तासको विचित्र ऐसो धरै है॥१३३॥

(३०)

जैसे इस लोकमें महान इन्द्रनील रत्न,
दूधमाहिं डारै तब ऐसो विरतंत है ।
आपनी आभासतें सफेदी भेद दूधकी सो,
नीलवर्न दूधको करत दरसंत है ॥
ताही भांति केवलीके ज्ञानकी शकति वृन्द,
ज्ञेयनको ज्ञानाकार करत लसंत है ।
निहचै निहारें दोऊ आपसमें न्यारे तौऊ,
व्याप्य अरु व्यापकको यही विरतंत है ॥१३४॥

(३१)

षट्पद ।

जो सब वस्तु न लसें, ज्ञान केवलमहँ आनी ।
तो तब कैसे होय, सर्वगत केवलज्ञानी ॥
जो श्रीकेवलज्ञान, सर्वगत पदवी पायो ।
तो किमि वस्तु न बसहिं, तहां सब यों दरसायो ॥
उपचार द्वारतें ज्ञान जिमि, ज्ञेयमाहिं प्रापति कही ।
ताही प्रकारतें ज्ञानमें, वस्तु वृन्द वासा लही ॥ १३५ ॥

(३२)

मनहरण ।

केवली जिनेश परवस्तुको न गहै तजै,
तथा पररूप न प्रनवै तिहूँ कालमें ।

जातैं ताकी ज्ञान जोति जगी है अकंपरूप,
छायक सभावसुख वेवै सर्व हालमें ॥
सोई सर्व वस्तुको विलोकै जाने सरवंग,
रंच हू न बाकी रहै ज्ञानके उजालमें ।
आरसीकी इच्छा विना जैसे घटपटादिक,
होत प्रतिविंबित त्यों ज्ञानी गुनमालमें ॥१३६॥

दोहा ।

राग उदयतें संगरह, दोष भावतें त्याग ।
मोहउदय पर–परिनमन, ऐसे तीन विभाग ॥ १३७ ॥
गहन–तजन–परपरिनमन, इनहीतें नित होत ।
तास नाशकरिकै भयो, केवल जोत उदोत ॥ १३८ ॥
जिनकी ज्ञानप्रभा अचल, यथा महामनि-जोत ।
प्रथमहिं जो सव लखि लियो, सो न अन्यथा होत १३९
जथा आरसी स्वच्छके, इच्छाको नहिं लेश ।
लसत तहां घटपट प्रगट, यही सुभाव विशेष ॥ १४० ॥
तैसे श्रीसरवज्ञके, इच्छाको नहिं अंस ।
निरइच्छा जानत सकल, शुद्धचिदातम हंस ॥ १४१ ॥
ऐसे श्रीसर्वज्ञ हैं, ज्ञान भान अमलान ।
वृंदावन तिनको नमत, सदा जोरि जुगपान ॥ १४२ ॥

(३३)

मत्तगयन्द।

जो भवि भावमई श्रुतितैं, निज आतमरूप लखै सरवंगा।
ज्ञायकभावमई वह आप, निजौ-परको पहिचानत चंगा॥
सो श्रुतिकेवली नाम कहावत, जानत वस्तु जथावत अंगा।
लोकप्रदीप रिपीसुरने, इहिभांति भनी भ्रमभानि प्रसंगा १४३

मनहरण।

निरदोष गुनके निधान निरावर्नज्ञान,
ऐसे भगवान ताकी वानी सोई वेद है।
ताके अनुसार जिन जान्यो निजआतमाको,
सहितविशेष अनुभवत अखेद है॥
सोई श्रुतिकेवली कहावै जिन आगममें,
आपापर जाने भले भरम उछेद है।
केवली प्रभूके परतच्छ इनके परोच्छ,
ज्ञायक शकतिमाहिं इतनो ही भेद है॥१४४॥
केवलीके आवरन नाशतैं प्रतच्छ ज्ञान,
वेदै एकै काल सुखसंपत अनंत हैं॥
इनके करम आवरनतें करम लियें,
जेतो जानपनो तेतो वेदै सुखसंत है॥
कोऊ भानु उदै देखै सकल पदारथको,
कोऊ दीखे दीपद्वार थोरी वस्तु तंत है।

जानत जथारथ पदारथको दोऊ वृंद,
प्रतच्छ परोच्छहीको भेद वरतंत है ॥ १४५ ॥
जैसे मेघावर्नतें वखाने भानुविभाभेद,
जोतिमें विभेद माने प्रगट लवेद है ।
एक ज्ञानधारामें नियारा पंचभेद तैसे,
जानत क्रियामें तहाँ भेदको निषेद है ॥
केवलीके आवरन नाशतें प्रतच्छ ज्ञान,
इनके परोच्छ श्रुतिद्वारतें सुवेद है ॥
साँचे सरधानी दोऊ राचे रामरंगमाहिं,
कोऊ परतच्छ कोऊ परोच्छ अछेद है ॥१४६॥

तोटक ।

इहि भांति जिनागममाहिं कही ।
श्रुतिकेवलिलच्छन दच्छ गही ॥
निज आतमको दरसै परसै ।
अनुभौ रसरंग तहां वरसै ॥ १४७ ॥

दोहा ।

शब्दब्रह्मकरि जिन लख्यो, ज्ञानब्रह्म निजरूप ।
ताहीको श्रुतिकेवली, भाषतु हैं जिनभूप ॥ १४८ ॥

(३४)

मत्तगयन्द ।

श्रीसरवज्ञहृदम्बुधितें, उपजी धुनि जो शुचि शारद गंगा ।
सो वह पुग्गलद्रव्यमई, भइ अंग उपंग अभंग तरंगा ॥

ताकहँ जो पहिचानत है, सोइ ज्ञान कहावत भावश्रुतंगा ।
सूत्रहुको गुरुज्ञान कहैं, सो विचार यहां उपचार प्रसंगा १४९

(३५)

षट्पद ।

जो जाने सो ज्ञान, जुदो कछु वस्तु न जानो ।
आतम आपहि ज्ञान, धर्मकरि ज्ञायक मानो ॥
ज्ञानरूप परिनवै, स्वयं यह आतमरामा ।
सकल वस्तु तसु बोधमाहिं, निवसैं करि धामा ॥
जद्यपि संज्ञा संख्यादितैं, भेद प्रयोजनवश कहा ।
तदपि प्रदेशतैं भेद नहिं, एक पिंड चेतन महा ॥१५०॥

मनहरण ।

जैसे घसिहारो घास काटै लोह दांतलेसों,
तहां करतार क्रिया साधन नियारा है ।
तैसे आतमाविषैं न भेद है त्रिभेदरूप,
यहां तो प्रदेशतैं अभेद निराधारा है ॥
संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतैं वस्तुको,
अनन्तधर्मरूप सिद्ध साधन उचारा है ॥
गुणी गुणमाहिं जो सरवथा विभेद मानैं,
तहां तो मतच्छ दोष लागत अपारा है ॥१५१॥

मत्तगयन्द ।

आतमको गुन ज्ञानतैं भिन्न, बखानत हैं केई मूढ़ अभागे ।
दो विधि बात कहो तिनसों, वह ज्ञान विराजत है किहि जागे ॥

जो जड़में गुन ज्ञान बसै, तब तो जड़ चेतनता–पद पागे।
जीवहिमें जो बसे गुन ज्ञान, तो क्यों तुम गाल बजावन लागे॥

मनहरण।

जैसे आग दाहक–क्रियाको करतार ताको,
उष्णगुन दाहकक्रियाको सिद्ध करै है।
तैसे आतमाकी क्रिया ज्ञायकसुभाव तासु,
ज्ञानगुन साधन प्रधानता आचरै है॥
विवहार दिष्टतें विशिष्ट है विभेद वृन्द,
निहचै सुदिष्टसों अभेद सुधा झरै है।
आप चिन्मूरत अखंड द्रव्यदृष्टि ताके,
सत्ता गुन भेदतें अनंत धारा धरै है॥१५३॥

दोहा।

निरविकल्प आतम दरब, द्रव्यदृष्टिके द्वार।
जब गुन परज विचारिये, तब बहु भेद पसार॥१५४॥
जेते वचनविकल्प हैं, तेते नयके भेद।
सहित अपेच्छा सिद्ध सब, रहित अपेच्छ निषेद॥१५५॥
जहां सरवथा पच्छकरि, गहत वचनकी टेक।
तहां होत मिथ्यात मत, सधत न वस्तु विवेक॥१५६॥
तातें दोनों नयनिको, दोनों नयनसमान।
जथाथान सरधानकरि, वृंदावन सुख मान॥१५७॥
जहां अपेच्छा जासुकी, तहां ताहि करि मुख्य।
करो सत्य सरधान दिढ़, स्यादवाद रस चुख्य॥१५८॥

है सामान्यविशेषमय, वस्तु सकल तिहि काल ।
सो इकंतसों सधत नहिं, दूषन लगत विशाल ॥ १५९ ॥
तातें यह चिद्रूपको, प्रनवन है गुन ज्ञान ।
ज्ञानरूप वह आप है, चिदानंद भगवान ॥ १६० ॥

(३६)

षट्पद ।

पूरवकथित प्रमान, जीव ही ज्ञान सिद्ध हुव ।
ज्ञेय द्रव्य कहि त्रिविधि, विविध विधि भेद तासु ध्रुव॥
चिदानंदमें द्रव्य, ज्ञेय दोनों पद सोहै ।
अन्य पंच जड़वर्ग, ज्ञेय पदवी तिनको है ॥
यह आतम जानत सुपरको, ज्ञान वृन्द परकाश धर ।
परिनामरूप सनबंध है, ज्ञाता ज्ञेय अनादिकर ॥१६१॥
जदपि होय नट निपुन, तदपि निजकंध चढ़ै किमि
तिमि चिनमूरति ज्ञेय, लखहु नहिं लखत आप इमि ॥
यों संशय जो करै, तासुको उत्तर दीजे ।
सुपर प्रकाशकशक्ति, जीवमें सहज लखीजे ॥
जिमि दीप प्रकाशत सुघटपट, तथा आप दुति जगमगत ।
तिमि चिदानंदगुनवृंदमें, सपरप्रकाशक पद पगत॥१६२॥

चौपाई ।

ज्ञेय त्रिधातमको यह अर्थ । भाषा श्रीगुरुदेव समर्थ ।
भूतअनागत वरतत जेह । परजय भेद अनंते तेह ॥१६३॥

अथवा उतपतिव्ययध्रुवरूप । तथा द्रव्यगुनपरज प्ररूप ।
सुपर ज्ञेयके जे ते भेद । सो सब जानत ज्ञान अखेद १६४॥
ज्ञानरूप अरु ज्ञेयसरूप । द्रव्यरूप यह है चिद्रूप ।
और पंच जड़वर्जित ज्ञान । सदा ज्ञेयपद धरै निदान१६५॥
आतमज्ञान जोतिमय स्वच्छ । स्वपर ज्ञेय तहँ लसत प्रतच्छ।
वंदों कुंदकुंद मुनिराय । जिन यह सुगम सुमग दरसाय १६६

(३७)

मनहरण ।

जेते परजाय षट्द्रव्यनके होय गये,
अथवा भविष्यत जे सत्तामें विराजैं हैं ।
तेते सब भिन्न भिन्न सकल विशेषजुत,
शुद्ध ज्ञान भूमिकामें ऐसे छवि छाजैं हैं ॥
जैसे ततकाल वर्तमानको विलोकै ज्ञान,
तैसे भगवान अविलोकैं महाराजैं हैं ।
भूतभावी वस्तु चित्रपटमें निहारैं जैसे,
गहै ज्ञान ताको तैसे तहां भ्रम भाजैं हैं ॥१६७॥

दोहा ।

वर्तमानके ज्ञेयको, जो जानत है ज्ञान ।
तामें तो शंका नहीं, देखत प्रगट प्रमान ॥ १६८ ॥
भूत भविष्यत पर्ज तो, है ही नाहीं मित्त !
तब ताको कैसे लखै, यह भ्रम उपजत चित्त ॥ १६९ ॥

बाल अवस्थाकी कथा, जब उर करिये याद ।
तब प्रतच्छवत होत सब, यामें नाहिं विवाद ॥ १७० ॥
अथवा भावी वस्तु जे, वेदविदित सब ठौर ।
तिनहिं विचारत ज्ञान तहँ, होत तदाकृति दौर ॥१७१॥
बाहूबलि भरतादि जे, ऽतीत पुरुष परधान ।
अथवा श्रेणिक आदि जे, होनहार भगवान ॥ १७२ ॥
तिनको चित्र विलोकतें, ऐसो उपजत ज्ञान ।
जैसे ज्ञेय प्रतच्छको, जानत ज्ञान महान ॥ १७३ ॥
छदमस्थनिके ज्ञानकी, जहँ ऐसी गति होय ।
जानहिं भूत भविष्यको, वर्तमानवत सोय ॥ १७४ ॥
तब जिनके आवरनको, भयौ सरवथा नाश ।
प्रगट्यो ज्ञान अनंतगत, सहजशुद्ध परकाश ॥ १७५ ॥
तिनके भूतभविष्य जे, परजै भेद अनंत ।
छहों दरबके लखनमें, शंका कहा रहंत ॥ १७६ ॥
यह सुभाव है ज्ञानको, जब मनवत निजरूप ।
तब जानत जुगपत जगत, त्रिविधि त्रिकालिकभूप ॥१७७
ऐसे परम प्रकाशमहँ, शुद्ध बुद्ध जिमि अर्क ।
तास प्रगट जानन विषैं, कैसे उपजै तर्क ॥ १७८ ॥
अपने वस्तुसुभावमें, राजै वस्तु समस्त ।
निज सुभावमें तर्क नहिं, यह मत सकल प्रशस्त ॥१७९॥

(३८)

दोहा ।

जे परजे उपजे नहीं, होय गये पुनि जेह ।
असद्भूत है नाम तसु, यों भगवान भनेह ॥ १८० ॥
ते सब केवलज्ञानमें, हैं प्रतच्छ गुनमाल ।
ज्यों चौवीसी थंभमें, लिखी त्रिकालिक हाल ॥ १८१ ॥

(३९)

द्रुमिला ।

जिस ज्ञानविषैं परतच्छ समान, भविष्यत भूत नहीं झलकै ।
परजाय छहों विधि द्रव्यनके, निहचै करके सब ही थलकै ॥
तिस ज्ञानकों कौन प्रधान कहै, भवि वृंद विचार करो मलकै ।
वह तो नहिं पूज पदस्थ लहै, न त्रिकालिकज्ञेय जहाँ ललकै ॥

(४०)

काव्य (मात्रा २६)।

जो इंद्रिनसों भये आप सनबन्ध पदारथ ।
तिनको ईहादिकन सहित, जो जानत सारथ ॥
सो जन वस्तु परोच्छ तथा, सूच्छिम नहिं जाने ।
मतिज्ञानीकी यही शकति, जिनदेव वखाने ॥ १८३ ॥

मनहरण ।

इंद्रिनके विषय जे विराजत हैं थूलरूप,
तिनसों मिलाप जब होय तब जाने हैं ।

अवग्रह ईहा औ अवाय धारणादि लिये,
क्रमसौं विकल्पकरि ठीकता सो माने हैं ॥
भूतभावी परजै प्रमान औ अरूपीवस्तु,
इंद्रिनतें सर्व ये अगोचरप्रमाने हैं ।
जातें इन गच्छिनिको अच्छतें न ज्ञान होत,
ताहीसेती अच्छज्ञान तुच्छ ठहराने है ॥१८४॥

(४१)

अपदेशीकालानु प्रदेशी पंच अस्तिकाय,
मूरतीक पुग्गल अमूरतीक पाँच है ।
तिनके अनागत अतीत परजाय भेद,
नाना भेद लिये निज निज थल माच है ॥
सर्वको प्रतच्छ एक समैहीमें जाने स्वच्छ,
अतीन्द्रियज्ञान सोई महिमा अवाच है ।
बारवार वंदत पदारविंदताको वृंद,
जाको पद जानैतें न नाचै कर्मनाच है ॥१८५॥

सवैयाछन्द ।

इंद्रियजनित ज्ञानहीतें जे, मतवाले माने सरवज्ञ ।
सो तौ प्रगट विरोध बात है, पच्छ छांड़ि परखौ किन तज्ञ ॥
सूक्ष्मान्तरित दूरके द्रव्यनि,-सौं न प्रतच्छ लखै अलपज्ञ ।
यातें निरावरन निरदूषित, छायक ही ज्ञानी सारज्ञ ॥१८६॥

(४२)

षट्पद ।

जो ज्ञाता परिनवै, ज्ञेयमें विकल्प धारै ।
तिहिको छायकज्ञान, नाहिं यों जिन उचारै ॥
वह विकलपजुत वस्तु, वृंद अनुभव न करै है ।
मृगतृष्णा इव फिरत, नाहिं संतोष धरै है ॥
तातैं विकलपजुतज्ञानको, नहिं छायकपदवी परम ।
यह पराधीन इन्द्रियजनित, वह सुबोध आतमधरम१८७॥

(४३)

दुमिला ।

भगवंत भनी जगजंतुनिको, जब कर्मउदै इत आवत है ।
तब राग विरोध विमोहि दशाकरि, नूतनबंध बढ़ावत है ॥
दिढ़ आतम जोति जगै जिनको, तिनको रस दै खिर जावत है।
नहिं नूतन बंध बँधै तिनको, इमि श्रीगुरुवृंद बतावत है१८८॥

(४४)

मनहरण ।

तिन अरहंतनिके इच्छाविना क्रिया होत, कायजोग बैठन उठन डग भरनो । दिव्यध्वनि धारासों दुधारा धर्म भेद भनै, ताहीके अधारा भवपारावार तरनो ॥ मायाचार नारिनिमें नारिवेद–उदै जैसे, केवलीके तैसे औदयिकक्रिया वरनो । देखो ! मेघमाला नाद करत रसाला उठि, चलत विशाला तैसे तहाँ उर धरनो ॥ १८९ ॥

दोहा।

प्रश्नः—पूछत शिष्य विनीत इत, विन इच्छा भगवान।
दिच्छा शिच्छा देत किमि, उठत चलत थितिठान॥१९०

उत्तरः—सुविहायोगत कर्म है, चलन-फिरनको हेत।
सोई निज रस दे खिरत, उठत चलत थिति लेत॥१९१॥

विन इच्छा जिमि चलत हैं, मेघ पवनके जोग।
आरज श्रीअरहंत तिमि, विहरहिं कर्म-नियोग॥ १९२॥

भाषा-प्रकृति उदोत लगु, वानी खिरत त्रिकाल।
स्वतः अनिच्छा रूपतें, तहां अलौकिक चाल॥ १९३॥

रसन दशन हालै न कछु, लगत न ओंठ लगार।
विकृति होत नहिं अंगको, महिमा अपरंपार॥ १९४॥

अष्ट स्थानकतैं वरनै, उपजत संजुतशोर।
जिनध्वनि वर्जित तासतैं, जथा मेघ घनघोर॥ १९५॥

सो जब तहां पुनीत जन, पूछहिं सन्मुख आय।
दिव्यध्वनि तब खिरत है, निमित तासुको पाय॥१९६॥

निमित और नैमितकको, बन्यो बनाव अनाद।
सब मत मानत बात यह, यामें नाहिं विवाद॥ १९७॥

चिंतामनि अरु कल्पतरु, ये जड़ प्रगट कहाहिं।
मनवांछित संकल्प किमि, सिद्धि करहिं पलमाहिं॥१९८

१ वर्ण-अक्षर।

पारस निज गुन देत नहिं, नहिं परऔगुन लेत।
किमि ताको परसत तुरत, लोह कनकछवि देत ॥१९९॥
इच्छारहित अनच्छरी, ऐसे जिनधुनि होय।
उठन चलन थितिकरनमें, यहां न संशय कोय ॥२००॥

(४५)

मनहरण।

पुण्यहीको फल है शरीर अरहंतनिको, फेरि तिन्हैं सोई कर्म उदै जब आवै है। तबै काय वैन जोग क्रियाको उदोत होत, जथा मेघ चौलै डोलै वारि वरसावै है ॥ जातैं मोहआदिको सरवथा अभाव तहाँ, तातैं वह क्रिया बूंद छायकी कहावै है। पूर्वबंध खिरो जात नूतन न बंधै पात, छायकीको ऐसोई सुभेद वेद गावै है ॥ २०१ ॥

चौपाई।

चार भांति करि बंध विभागा। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभागा।
जोगद्वारतैं प्रकृति प्रदेशा। थिति अनुभाग मोहकृत भेषा॥
जहां मूलतैं मोह विनाशै। तहँ किमि थिति अनुभाग प्रकाशै।
पूरवबंध उदै जो आवै। सो निज रस दैकै खिरि जावै॥

दोहा।

भानु वसत आकाशमें, जलमें जलज वसंत।
किमि ताको अवलोकते, विकसित होत तुरंत ॥ २०४ ॥
अस्त गमस्त विलोकते, चकवा तिय तजि देत।
लखहु निमित नैमतिकको, प्रगट अनाहत हेत ॥२०५॥

तैसे पुण्यनिधानके, प्रश्न होत परमान।
जिनधुनि खिरत अनच्छरी, इच्छारहित महान ॥ २०६॥
जैसे शयनदशाविषैं, कोउ करि उठत प्रलाप।
विनु इच्छा तसु वचन तहँ, खिरत आपतैं आप ॥ २०७
जब इच्छाजुतको वचन, खिरत अनिच्छा येम।
तब सो वचनखिरनविषै, इच्छाको नहिं नेम ॥ २०८॥
चिंतामनि सुरवृच्छलैं, गुनित अनंतानंत।
शक्ति सुखद जिनदेहमें, सहज सुभाव लसंत ॥ २०९ ॥
जैसी जिनकी भावना, तैसी तिनकौं दीस।
धुनि धारासों विस्तरत, इन्द्र धरत सत शीस ॥ २१० ॥
अब जिहिविधि वरनात्तमक, होत सुधारण धार।
ताको सुनि शरधा करो, ज्यौं पावो भवपार ॥ २११ ॥
श्रीगनधर वर रिद्धिधर, सुनहिं सुधुनि अमलान।
तिनहूकी मतिमें सकल, वानी नाहिं समान ॥ २१२ ॥
जेतो मतिभाजन तितो, धर्यंन गही गनईश।
बीस अंक परमान श्रुति, रची तादि नुतशीस ॥ २१३ ॥
ताहीके अनुसार पुनि, और सुगुरु निरग्रंथ।
रचना जिनसिद्धांतकी, रचहिं सुखद शिवपंथ ॥ २१४ ॥

चौपाई।

आतमराम शुद्ध उपयोगी। अमल अतिंद्री आनँदभोगी।
तिनकी क्रिया छायकी[1] वरनी। वृंदावन बंदत भवतरनी ॥

[1] क्षायक।

(४६)

माधवी ।

जदि आतम आप सुभावहितैं, स्वयमेव शुभाशुभरूप न होई।
तदि तौ न चहै सब जीवनिके, जगजाल दशा चहिये नहिं कोई ॥
जब बंध नहीं तब भोग कहां, जो बँधै सोई भोगवै भोग तितोई ।
यह पच्छ प्रतच्छ प्रमानतैं साधते, खंडन सांख्यमतीनिकी होई॥

छन्दसवैया-(सांख्यमतीका लक्षण ।)

सांख्य कहै संसारविषैं थित, जीव शुभाशुभ करै न भाव ।
प्रकृति करै करमनिको ताकौ, फल भुगतै चिन्मूरति-राव ॥
तहां विरोध प्रगट प्रतिभासत, विना किये कैसे फल पाव ।
जातैं जो करता सो भुक्ता, यही राजमारगको न्याव ॥ २१७

(४७)

अशोकपुष्पमंजरी ।

वर्तमान कालके गुनौ समस्त पर्ज वा, भविष्यभूतकालके जिते अनंतनंत हैं । सव्व दव्वके सवंग जे विचित्रता तरंग अंतरंग चिन्ह भिन्न भिन्न सो दिपंत हैं ॥ एक ही समै सु एक बार ही लख्यौ तिन्हैं प्रतच्छ अंतरंग छेद स्वच्छता धरंत हैं। छायकीय ज्ञान है यही त्रिलोकवंद वृंद जो समौ विषम्यमें समान भासवंत है ॥ २१८ ॥

(समविषमकथन)-मनहरण ।

कोऊ द्रव्य काहूके समान न विराजत है, याहीतैं विषम

सो बखानै गुरु ग्रंथमें। मति श्रुति औधै मनपर्जके विषय तेऊ, विषम कहावत छयोपशम पंथमें॥ सर्व कर्म सर्वथा विनाशिके प्रतच्छ सच्छ, छायक ही ज्ञान सिद्ध भयो श्रुति मंथमें। सोई सर्व दर्वको विलोकै एकै समैमाहिं, महिमा न जासकी समाल ग्रंथकंथमें ॥ २१९ ॥

(४८)

मनहरण।

तीनोंलोकमाहिं जे पदारथ विराजैं तिहूं,—कालके अनंतानंत जासुमें विभेद है। तिनको प्रतच्छ एक समैहीमें एकै बार, जो न जानि सकै सच्छ अंतर उछेद है॥ सो न एक दर्वहूको सर्व परजायजुत, जानिवेकी शक्ति धरै ऐसे भने वेद है। तातैं ज्ञान छायककी शक्ति व्यक्त **वृंदावन**, सोई लखै आप-पर सर्वभेद छेद है ॥ २२० ॥

(४९)

मत्तगयन्द।

जो यह एक चिदातम द्रव्य, अनन्त धरै गुनपर्यय सारो।
ताकहँ जो नहिं जानतु है, परतच्छपनै सरवंग सुधारो॥
सो तब क्यों करिके सब द्रव्य, अनंत अनंत दशाजुत न्यारो।
एकहि कालमें जानि सकै यह, ज्ञानकी रीतिको क्यों न विचारो॥

मनहरण।

घातिकर्म घातके प्रगट्यो ज्ञान छायक सो, दर्वदिष्टि

१ अवधिज्ञान। २ प्रवरूपी कंथामें-वस्त्रमें।

देखते अभेद सरवंग है। ज्ञेयनिके जानिवेतैं सोई है अनंत रूप, ऐसे एक औ अनेक ज्ञानकी तरंग है॥ तातैं एक आतमाके जानेहीतैं वृन्दावन, सर्व दर्व जाने जात ऐसोई प्रसंग है। केवलीके ज्ञानकी अपेच्छातैं कथन यह, मथन करी है कुंदकुंदजी अभंग है॥ २२२॥

(५०)

अरिल्ल।

जो ज्ञाताको ज्ञान अनुक्रमको गही।
वस्तुनिको अवलंबत उपजत है सही।
सो नहिं नित्य न छायक नहिं सरवज्ञ है।
पराधीन तसु ज्ञान सो जन अलपज्ञ है॥ २२३॥

(५१)

मनहरण।

तिहूंकालमाहिं नित विषम पदारथ जे, सर्व सर्वलोकमें विराजें नाना रूप है। एकै बार जानै फेरि छाँड़ै नाहिं संग ताको, सैंगकी सी रेखा तथा सदा संगमूप है॥ अमल अचल अविनाशी ज्ञानपरकाश, सहजसुभाविकसुधारसको कूप है। श्रीजिनिंददेवजूके ज्ञान गुन छायककी, अहो भविवृन्द यह महिमा अनूप है॥ २२४॥

फोऊ मूरतीक फोऊ मूरतिरहित द्रव्य, काहुके न काय

१ पत्थरकी

कोऊ द्रव्य कायवंत है । कोऊ जड़रूप कोऊ चिदानंदभूप यातैं, सर्व दर्व सम नाहिं विषम अनंत हैं ॥ तिनके त्रिकालके अनंत गुनपरजाय, नित्यानित्यरूप जे विचित्रता धरंत है। सर्वको प्रतच्छ एक समैमें ही जानै ऐसे, ज्ञानगुन छायककी महिमा अनंत है ॥ २२५ ॥

(५२)

मनहरण ।

शुद्ध ज्ञानरूप सरवंग जिनभूप आप, सहज-सुभाव-सुखसिंधुमें मगन है । तिन्हें परवस्तुके न जानिवेकी इच्छा होत, जातैं तहां मोहादि विभावकी भगन है ॥ तातैं पररूप न प्रनवै न गहन करै, पराधीन ज्ञानकी न कबहूं जगन है । ताहीतैं अबंध यह ज्ञान किया सदाकाल, आतमप्रकाशहीमें जासकी लगन है ॥ २२६ ॥

दोहा ।

क्रिया दोइ विधि वरनई, प्रथम प्रज्ञप्ती जानि ।
ज्ञेयारथ परिवरतनी, दूजी क्रिया बखानि ॥ २२७ ॥
अमलज्ञानदरपनविषैं, ज्ञेय सकल झलकंत ।
प्रज्ञप्ती है नाम तसु, तहां न बंध लसंत ॥ २२८ ॥
ज्ञेयारथ परिवरतनी, रागादिकजुत होत ।
जैसो भावविकार तहँ, तैसो बंधउदोत ॥ २२९ ॥

पद्धतिका-पद्दड़ी। (अधिकारान्तमंगल।)

ज्ञानाधिकार यह मुकतिपंथ। गुरु कथी सारश्रुतिसिंधु मंथ॥
मुनि कुंदकुंदके जुगल पांय। वृन्दावन वन्दत शीस नाय॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनकृतभाषामें प्रथम ज्ञानाधिकार पूरा भयो।

१ (क प्रतिमें) "मिती कार्तिककृष्णा १४ चौदश, संवत् १९०५ बुधवारे (ख प्रतिमें) संवत्१९०६ चैत्रशुक्ला पूर्णमास्याम् मन्दवासरे।" इस प्रकार लिखा है।

अथ द्वितीयसुखाधिकारः प्रारभ्यते ।

मंगलाचरण ।

चरनकमल कमला वसत, सारद सुमुखनिवास ।
देवदेव सो देव मो, कमला वागविलास ॥ १ ॥
श्रीसरवज्ञ प्रनाम करि, कुंदकुंद मुनि वंदि ।
बरनों सुखअधिकार अब, भवि उर-भरम निकंदि ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

अँर्थनिकैमाहिं जो अतीन्द्रीज्ञान राजत है, सोई तो अमूरतीक अचल अमल है। बहुरि जो इंद्रियजनित ज्ञान उपजत, सोई मूरतीक नाम पावत समल है ॥ ताही भांति सुखहू अतीन्द्री है अमूरतीक, इंद्रीसुखमूरतीक सोऊ न विमल है। दोऊमें परम उतकृष्ट होय गहो ताहि, सोई ज्ञान सुख शिवरमाको कमल है ॥ ३ ॥

अतीन्द्रियज्ञान सुख आतमसुभाविक है, एक रस सासतो अखंड धार वहै है। शत्रुको विनाशिके उपज्यो है अबाध-रूप, सर्वथा निजातमीक-धर्मको गहै है ॥ इंद्रीज्ञानसुख पराधीन है विनाशिक है, तातैं याको हेय जानि ऐसो गुरु कहै है। ज्ञानसुखपिंड चिनमूरति है वृंदावन, धर्मीमें अनंत धर्म जुदे जुदे रहै है ॥ ४ ॥

---

१ पदार्थोंमें ।

(२)

जाकी ज्ञान प्रभामें अमूरतीक सर्व दर्व, तथा जे अतींद्री-गम्य अनू पुदगलके। तथा जे प्रछन्न द्रव्य क्षेत्र काल भाव चार, सहितविशेष वृंद निज निज थलके ॥ और निज आतमके सकल विभेद भाव, तथा परद्रव्यनिके जेते भेद ललके। ताही ज्ञानवंतको प्रतच्छ स्वच्छ ज्ञान जानो, जामें ये समस्त एक समैहीमें झलके ॥ ५ ॥

(३)

जीव है सुभावहीतैं स्वयंसिद्ध अमूरत, द्रव्यद्वार देखते न यामें कछु फेर है। सोई फेर निश्चैसों अनादि कर्मबंध जोग, मूरतीक दीखै जैसो देहको गहे रहै ॥ ताही मूरतीकतैं सुजोग मूर्त पदारथ, तिनको अवग्रहादिकतैं जानते रहै। अथवा छ्योपशममन्दता भयेतैं सोई, थूल मूरतीकहू न जानत किते रहै ॥ ६ ॥

दोहा।

देह धरेतैं आतमा, द्रव्येंद्रिनिके द्वार।
निकट थूल मूरत दरव; तिनको जाननिहार ॥ ७ ॥
अथवा छय उपशम घटैं, निपट निकट जे वस्त।
तिनहुँ न जानि सकै कभी, यह जगविदित समस्त ॥ ८ ॥
पंचिन्द्रिनिके विषयको, जानि अनुभवै सोय।
इंद्रियसुख सो जानियो, मूरतीकमें होय ॥ ९ ॥

यातैं ज्ञानी सुख दोऊ, वसहिं सदा इक संग ।
मूरतिमाहीं मूरतिक, इतरमाहिं तदरंग ॥ १० ॥
फरस रूप रस गंध अरु, श्रवनिंद्रिनिके भोग ।
ज्ञानद्वारतें जानिके, सुख अनुभव उपयोग ॥ ११ ॥
यातैं ज्ञानरु सौख्यको, अविनाभावी संग ।
चिद्विलासहीमें बसत, उपजहिं संग उमंग ॥ १२ ॥
इंद्रियज्ञानरु सौख्य जिमि, मूरतीकमें जान ।
तथा अतिंद्रियज्ञान सुख, बसत अतिंद्रियथान ॥ १३ ॥
कहा कहौं नहिं कहि सकौं, वचनगम्य नहिं येह ।
अनुभव नयन उघारि घट, वृंदावन लखि लेह ॥१४॥

(जीवदशा ।) मनहरण ।

अनादितैं महामोह मदिराको पान किये, ठौर ठौर करत उराहनेको काम है । अज्ञान अँधारेमें सँभारै न शकति निज, इंद्रिनिके लारे किंधै देहहीमें धाम है ॥ लपटि झपटि गहै मूरतीक भोगनिको, शुद्धज्ञानदशासेती भई बुद्धि वाम है । ऐसी मूरतीक ज्ञान परोच्छकी लीला वृंद, भाषी कुंदकुंद गुरु तिनको प्रनाम है ॥ १५ ॥

(४)

षट्पद ।

फरस रूप रस गंध, शब्द ये पुग्गलीक हैं ।
पंचेंद्रिनिके जथाजोग ये, भोग ठीक हैं ॥

सब इंद्री निजभोगन, जुगपत गहन करैं हैं।
छय उपशम क्रमसहित; भोग अनुभवत रहैं हैं।
ज्यों काक लखत दो नयनतैं, एक पूतली फिरनिकर।
जुगपत नव भेदि सलखि सकत,त्यों इंद्रिनिकी रीति तर॥
जीव जीभके स्वादमाहिं, जिहिकाल पगै है।
अन्येंद्रिनिके भोगमें न, तब भाव लगै है॥
निज निज रस सब गहैं, जदपि यह सकति अच्छमहँ।
तदपि न एकै काल, सकल रस अनुभवते तहँ॥
रस वेदहिं क्रमहीसों सभी, छय उपशमकी सकति यहि।
जातैं परोच्छ यह ज्ञान है, पराधीन मूरति सु गहि॥१७॥

दोहा।

यह परोच्छ ही ज्ञानतैं, इंद्रिनिको रस जान।
चिदानंद सुख अनुभवहि, जेतो ज्ञान प्रमान॥ १८॥
तातैं ज्ञानरु सुख दोउ, हैं परोच्छ परतंत।
मूरतीक बाधासहित, यातैं हेय भनंत॥ १९॥

(९)

छन्द सवैया।

जे परदरवमई हैं इन्द्री, ते पुद्गलके बने बनाव।
चिदानंद चिद्रूप भूपको, यामैं नाहीं कहूं सुभाव॥
तिन करि जो जानत है आतम, सो किमि होय प्रतच्छ लखाव।
पराधीन तातैं परोच्छ यह, इन्द्रीजनित ज्ञान ठहराव॥२०॥

मत्तगयन्द ।

पुद्गलदर्वमई सब इंद्रिय, तासु सुभाव सदा जड़ जानो ।
आतमको तिहुंकालविषैं, नित चेतनवंत सुभाव प्रमानो ॥
तौ यह इंद्रियज्ञान कह्यो, किहि भांति प्रतच्छ कहाँ ठहरानो ।
तातैं परोच्छ तथा परतंत्र, सु इंद्रियज्ञान भनौ भगवानो ॥ २१ ॥

(६)

मनहरण ।

परके सहायतैं जो वस्तुमें उपजै ज्ञान, सोई है परोच्छ तासु भेद सुनो कानतैं । जथा उपदेश वा छयोपशम लाभ तथा, पूर्वके अभ्यास वा प्रकाशादिक भानतैं ॥ और जो अकेले निज ज्ञानहीतैं जानैं जीव, सोइ है प्रतच्छ ज्ञान साधित प्रमानतैं । जातैं यह परकी सहाय बिन होत वृंद, अतिंद्रिय आनंदको कंद अमलानतैं ॥ २२ ॥

(७)

मनहरण ।

ऐसो ज्ञानहीको 'सुख' नाम जिनराज कह्यो, जौन ज्ञान आपने सुभावहीसों जगा है । निरावर्नताई सरवंग जामें आई औ जु, अनंते पदारथमें फैलि जगमगा है ॥ विमल सरूप है अभंग सरवंग जाको, जामें अवग्रहादि क्रियाको क्रम भगा है । सोई है प्रतच्छ ज्ञान अतिंद्री अनाकुलित, याहीतैं अतिंद्रीसुख याको नाम पगा है ॥ २३ ॥

(८)

मत्तगयन्द ।

केवलनाम जो ज्ञान कहावत, है सुखरूप निराकुल सोई ।
ज्ञायकरूप वही परिनाम, न खेद कहूं तिन्हिके मधि होई ॥
खेदको कारण घातिय कर्म, सो मूलतैं नाश भयो मल धोई ।
यातैं अतिंद्रिय ज्ञान सोई, सुख है निहचै नहिं संशय कोई ॥२४

मनहरण ।

घातिया करम यही ज्ञानमांहि खेद करै, जातैं मोहउदै मतवालो होत आतमा । झूठी वस्तुमांहि बुद्धि सांची करि धावतु है, खेदजुत इंद्रीविषै जानै बहु भांतमा ॥ जाके घाति कर्मको सरवथा विनाश भयो, जग्यो ज्ञान केवल अनाकुल विख्यातमा । त्रिकालके ज्ञेय एकै बार चित्रभीतवत, जानै जोई ज्ञान सोई सुख है अध्यातमा ॥ २५ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

केवलज्ञान अनन्तप्रभातैं, पदारथकें सब पार गया है ।
लोक अलोकविषैं जसु दिष्टि, विशिष्टपनें विसतार लया है ॥
सर्व अनिष्ट विनष्ट भये, औ जु इष्ट सुभाव सो लाभ लया है ।
यातैं अभेद दशा करिकै यह, ज्ञानहिको सुख सिद्ध ठया है ॥२६

दोहा ।

जब ही घाति विघातिकै, शुद्ध होय सरवंग ।
ज्ञानादिक गुन जीवके, सोई सौख्य अभंग ॥ २७ ॥

निजाधीन जानै लखै, सकल पदारथ वृन्द ।
खेद न तामैं होत कछु, केवलजोति सुछन्द ॥ २८ ॥
तातैं याही ज्ञानको, सुखकरि बरनन कीन ।
भेदविविच्छा छांड़िके, कुन्दकुन्द परवीन ॥ २९ ॥

(१०)

माधवी ।

जिनको यह घातियकर्म विघातिकै, केवल जोति अनन्त फुरी है ।
सुखमें उतकिष्ट अतींद्रिय सौख्य, तिन्हैं सरवंग अभंग पुरी है ॥
तिसको न अभव्य प्रतीत करैं, पुनि दूर हु भव्यकी बुद्धि दुरी है ।
यह बात वही शरधा धरि हैं, जिनके भवकी थिति आनि जुरी है ॥

दोहा ।

इन्द्रीसुखजुत मुक्ति जे, मानहिं मूढ़ अयान ।
तिनको मत शतखंड करि, श्रीगुरु हनी निशान ॥३१॥

(११)

माधवी ।

नर इंद्र सुरासुर इंद्रनिको, सहजै जब इंद्रियरोग सतावै ।
तब पीड़ित होकर भोगनको[1], नित भोग मनोगेन[2]माहिं रमावै ॥
तहँ चाहकी दाह नवीन बढ़ै, घृतआहुतिमें जिमि आगि जगावै ।
सहजानँद बोध विलास विना, नहिं ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥

१ इन्द्रियोंको । २ मनोज्ञ ।

दोहा ।

स्वर्गविषैं इंद्रादिको, इंद्रियसुख भरपूर ।
सोउ खेद बाधासहित, सहजानँदतैं दूर ॥ ३३ ॥
तातैं इन्द्रीजनित सुख, हेय[1]रूप पहिचान ।
ज्ञानानन्द अनच्छसुख, करो सुधारस पान ॥ ३४ ॥

(१२)

षट्पद ।

जिन जीवनिको विषयमाहिं, रतिरूप भाव है ॥
तिनके उरमें सहज, दुःख दीखत जनाव है ॥
जो सुभावतैं दुःखरूप, इंद्री नहिं होई ।
तो विषयनिके हेत, करत व्यापार न कोई ॥
करि[2] मीन[3] द्विरेफ[4] शलभ[5] हरिन, विषयनि-वश तन परहरहिं ।
यातैं इंद्रीसुख दुखमई, कही सुगुरु भवि[6] उर धरहिं ॥ ३५ ॥

(१३)

मनहरण ।

संसार अवस्थाहूमें विभाव सुभावहीसों, यही जीव आप सुखरूप छवि देत है । जातैं पंच इन्द्रिनिको पायकै मनोग भोग, ताको रस ज्ञायकसुभावहीसों लेत है ॥ देह तो प्रगट जड़ पुग्गलको पिंड तामें, ज्ञायकता कहां जाको सुभाव

१ त्याज्य। २ हाथी। ३ मछली। ४ भ्रमर। ५ पतङ्ग। ६ भव्यजीव।

अचेत है। तातैं जक्त मुक्त दोऊ दशामाहिं वृंदावन, सुखरूप भावनिको आतमा निकेत है ॥ ३६ ॥

(१४)

सर्वथा प्रकार देवलोकहूमें देखिये तो, देह ही चिदात्माको सुख नाहिं करै है। जद्यपि सुरग उतकिष्ट भोग उत्तम जो, वैक्रियक काय सर्व पुण्यजोग भरै है ॥ तहां विषयनिके विवश भयो जीव आप, आप ही सुखासुखादि भावनि आदरै है। ज्ञायक सुभाव चिदानंदकंदहीमें वृंद, तातैं चिदानंद दोऊ दशा आप धरै है ॥ ३७ ॥

(१५)

चौबोला।

जिन जीवनिकी तिमिर हरनकी, जो सुभावसों दृष्टि अहै।
तौ तिनको दीपक प्रकाशतैं, रंच प्रयोजन नाहिं चहै ॥
तैसे सुखसुरूप यह आतम, आप स्वयं सरवंग लहै।
तहाँ विषय कहा करहिं वृन्द जहँ, सुधा सुभाविकसिंधु बहै ॥

(१६)

मत्तगयन्द।

ज्यों नभमें रवि आपुहितैं, धरै तेज प्रकाश तथा गरमाई।
देवप्रकृत्ति उदै करिकै, इस लोकविषै वह देव कहाई ॥
ताही प्रकार विशुद्ध दशाकरि, सिद्धनिके मुनिवृन्द बताई।
ज्ञानरु सौख्य लसै सरवंग, सो देव अभंग नमौं सिरनाई ३९

मनहरण ।

जैसे तेज प्रभा और उष्ण तथा देवपद, तीनों ही विशेपनिको धरै मारतंड है । तैसे परमातममें सुपरप्रकाशक, अनंतशक्ति चेतन सो ज्ञानगुनमंड है ॥ तथा आतमीक तृप्ति अनाकुल थिरतासों, सहज सुभाव सुखसुधाको उमंड है । आतमानुभवीके सुभाव शिलामाहिं सो, उकीरमान जक्त-पूज्य देवता अखंड है ॥ ४० ॥

दोहा ।

अतिइन्द्री सुखको परम, पूरन भयो विधान ।
कुन्दकुन्द मुनिको करत, वृंदावन नित ध्यान ॥ ४१ ॥[1]

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनकृतभाषामें दूसरा सुखअधिकार पूर्ण भयो[2] ।

---

१ संवत् १९०५ कार्तिकशुक्ला ५ बुधवासरे ।
१ ऐसा ही दर प्रतिमें है ।

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ तृतीयज्ञानतत्त्वाधिकारः लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

वंदौं श्रीसर्वज्ञपद, ज्ञानानंद सुचेत ।
जसु प्रसाद बरनन करौं, इन्द्रिय सुखको हेत ॥

(१)

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेव-जती-गुरु,—पूजनमाहिं रहै अनुरागी ।
चार प्रकारके दान करै नित, शीलविषैं दिढ़ता मन पागी ॥
आदरसों उपवास करै, समता धरिकै ममता मद त्यागी ।
सो शुभरूपपयोग धनी, वर पुण्यको बीज बवै बड़भागी ॥ १ ॥

(२)

कवित्त (३१ मात्रा)

शुभपरिनामसहित आतमकी, दशा सुनो भवि वृन्द सयान ।
उत्तम पशु अथवा उत्तम नर, तथा देवपद लहै सुजान ॥
थिति परिमान पंच इंद्रिनिके, सुख विलसै तित विविध विधान ।
फेरि भ्रमै भवसागरहीमें, तातैं शुद्धपयोग प्रधान ॥ २ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

देवनिके अनिमादिक रिद्धिकी, वृद्धि अनेक प्रकार कही है ।
तौ भी अतिंद्रियरूप अनाकुल, ताहि सुभाविक सौख्य नहीं है ॥

यों परमागममाहिं कही गुरु, और सुनो जो तहाँ नित ही है।
देहविथाकरि भोग मनोगनिमाहिं, रमै समता न लही है ॥३॥

(४)

मत्तगयन्द।

जो नर नारक देव पशू सब, देहज दुःखविषैं अकुलाहीं।
तो तिनके उपयोग शुभाशुभको, फल क्यों करिकै विलगाहीं ॥
जातैं निजातम धर्म सुधर्म, अतिंद्रिय शर्म नहीं तिनपाहीं।
तो भविवृन्द विचार करो अब, कौन विशेष शुभाशुभमाहीं ॥४॥

दोहा।

शुभपयोग देवादि फल, अशुभ दुखदफल नर्क।
शुद्धातम सुखको नहीं, दोनोंमें संपर्क ॥ ५ ॥
तब शुभ अशुभपयोगको, फल समान पहिचान।
कारजको सम देखिकै, कारन हू सम मान ॥ ६ ॥
तातैं इंद्रीजनित सुख, साधक शुभउपयोग।
अशुभपयोग समान गुरु, वरनी शुद्ध नियोग ॥ ७ ॥

(५)

अशोकपुष्पमंजरी।

वज्रपानि चक्रपानि जे प्रधान जक्तमानि[1],
ते शुभोपयोगतैं भये जु सार भोग है।
तासुतैं शरीर और पंच अच्छपच्छको,
सुपोषते बढ़ावते रमावते मनोग है॥

1 जगन्मान्य।

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ तृतीयज्ञानतत्त्वाधिकारः लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

वंदों श्रीसर्वज्ञपद, ज्ञानानंद सुचेत ।
जसु प्रसाद बरनन करों, इन्द्रिय सुखको हेत ॥

(१)

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेव-जती-गुरु,--पूजनमाहिं रहै अनुरागी ।
चार प्रकारके दान करै नित, शीलविषैं दिढ़ता मन पागी ॥
आदरसों उपवास करै, समता धरिकै ममता मद त्यागी ।
सो शुभरूपपयोग धनी, वर पुण्यको बीज बवै बड़भागी ॥ १ ॥

(२)

कवित्त (३१ मात्रा)

शुभपरिनामसहित आतमकी, दशा सुनो भवि वृन्द सयान ।
उत्तम पशु अथवा उत्तम नर, तथा देवपद लहै सुजान ॥
थिति परिमान पंच इंद्रिनिके, सुख विलसै तित विविध विधान ।
फेरि भ्रमै भवसागरहीमें, तातैं शुद्धपयोग प्रधान ॥ २ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

देवनिके अनिमादिक रिद्धिकी, वृद्धि अनेक प्रकार कही है ।
तौ भी अतिंद्रियरूप अनाकुल, ताहि सुभाविक सौख्य नहीं है ॥

यों परमागममाहिं कही गुरु, और सुनो जो तहाँ नित ही है।
देहविथाकरि भोग मनोगनिमाहिं, रमै समता न लही है ॥३॥

(४)

मत्तगयन्द ।

जो नर नारक देव पशू सब, देहज दुःखविषैं अकुलाहीं।
तो तिनके उपयोग शुभाशुभको, फल क्यों करिकै बिलगाहीं ॥
जातैं निजातम धर्म सुधर्म, अतिंद्रिय शर्म नहीं तिनपाहीं।
तो भविवृन्द विचार करो अब, कौन विशेष शुभाशुभमाहीं ॥४॥

दोहा ।

शुभपयोग देवादि फल, अशुभ दुखदफल नर्क।
शुद्धातम सुखको नहीं, दोनोंमें संपर्क ॥ ५ ॥
तब शुभ अशुभपयोगको, फल समान पहिचान।
कारजको सम देखिकै, कारन हू सम मान ॥ ६ ॥
तातैं इंद्रीजनित सुख, साधक शुभउपयोग।
अशुभपयोग समान गुरु, बरनी शुद्ध नियोग ॥ ७ ॥

(५)

अशोकपुष्पमंजरी ।

वज्रपानि चक्रपानि जे प्रधान जक्तमानि[1],
ते शुभोपयोगतैं भये जु सार भोग है।
तासुतैं शरीर और पंच अच्छपच्छको,
सुपोषते बढ़ावते रमावते मनोग है ॥

१ जगन्मान्य ।

लोकमें विलोकते सुखी समान भासते,
जैथैव जोंक रोगके विकारि रक्तको गहै ।
चाह दाहसों दहै न सामेंभावको लहै,
निजातमीक धर्मको तहां नहीं सँजोग है ॥ ८ ॥

(६)

कवित्त (३१ मात्रा) ।

जो निहचैकरि शुभपयोगतैं, उपजत विविध पुण्यकी रास ।
स्वर्गवर्गमें देवनिके वा, भवनत्रिकमें प्रगट प्रकास ॥
तहां तिन्हैं तृष्णानल चाढ़त, पाय भोग-घृत आहुति आस ।
जातैं बूंद सुधा-समरस विन, कवहुं न मिटत जीवकी प्यास॥९॥

(७)

मनहरण ।

देवनिको आदि लै जितेक जीवराशि ते ते, बिषैसुख आयुपरजंत सब चाहैं हैं । बहुरि सो भोगनिको बार बार भोगत हैं, तिशना तरंग तिन्हैं उठत अथाहैं हैं ॥ आगामीक भोगनिकी चाह दुख दाह बढ़ी, तासुकी सदैव पीर भरी उर माहैं हैं । जथा जोंक रकत विकारको तब लौं गहै, जौलौं शठ प्राणांतदशाको आय गाहैं हैं ॥ १० ॥

(८)

कुण्डलिया ।

इंद्रियजनित जितेक सुख, तामें पंच विशेष ।

१ यथा एव=जैसे ही । २ साम्यभाव=समता ।

पराधीन बाधासहित, छिन्नरूप तसु भेष ॥
छिन्नरूप तसु भेष, विषम अरु बंध चढ़ावै ।
यही विशेषन पंच, पापहूमें ठहरावै ॥
तब अब को बुधिमान, चहै इंदीसुख गिंदी ।
तातैं भजत विवेकवान, सुख अमल अतिंदी ॥ ११ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

पुण्यरु पापविषै नहिं भेद, कछू परमारथतैं ठहरै है ॥
जो इस भाँत न मानत है, वहिरातम बुद्धि वही गह रहै है ॥
सो जन मोह अछादित होय, भवोदधि घोरविषै लहरै है ।
ताहि न वार न पार मिलै, दुखरूप चहूंगतिमें हहरै है ॥१२
जैसे शुभाशुभमें नहिं भेद, न भेद भने सुख दुःखकेमाहीं ।
ताही प्रकारतैं पुण्य रु पापमें, भेद नहीं परमारथठाहीं ॥
जातैं जहां न निजातम धर्म, तहां चित चाहकी दाह सदाहीं ।
तातैं सुरिंदहिमिंद नरिंदकी, संपतिको चित्त चाहत नाहीं ॥१३

पद्धतिका । (पद्धरीछंद)

जे जीव पुण्य अरु पापमाहिं । माने विभेद हंकार गाहिं ॥
हेमाहनकी[1] वेड़ी समान । हैं बंध प्रगट दोनों निदान॥१४
परिपूरन जे धर्मानुराग । अवलंबैं शुद्धपयोग त्याग ॥
ताके फलतैं अहमिंद इंद । नर इंद संपदा लहैं वृंद ॥१५

१ सुवर्ण और लोहा ।

तहाँ भोग मनोग शरीर पाय। विलसैं सुख बहुविधि प्रमित आय
तित आकुलता दुःख मिटै नाहिं।तब कहो कहाँतैं सुखी आहिं॥१६

(१०)

मत्तगयन्द ।

जो नर या परकार जथारथ,—रूप पदारथको उर आनै ।
रागविरोधमई परिनाम, कभी परद्रव्यविषै नहिं ठानै ॥
सो उपयोग विशुद्ध धरे, सब देहज दुःखनिको नित मानै ।
आनँदकंद-सुभाव-सुधामधि, लीन रहै तिहि वृंद प्रमानै॥ १७

दोहा ।

आहंनतै दाहँन विलग, खात न घनकी घात ।
त्यौं चेतन तनराग विनु, दुखलव दहत न गात॥ १८ ॥
तातैं मुझ चिद्रूपको, शरन शुद्धउपयोग ।
होहु सदा जातैं मिटै, सकल दुखद भवरोग ॥ १९ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

पाप अरंभ सभी परित्यागिके, जो शुभचारितमें वरतंता ।
जो यह मोहको आदि अनादिके, शत्रुनिको नहिं त्यागत संता॥
तो वह शुद्ध चिदानँद संपति,—को तिरकालविषैं न लहंता ।
याहीतैं मोह महारिपुकी, रमनी दुरबुद्धिको त्यागहिं संता॥२०

१ लोहा। २ अग्नि ।

दोहा ।

तातैं साध्यसरूप है, शुद्धरूप उपयोग ।
ताके बाधक मोहको, दिढतर तजिबो जोग ॥ २१ ॥
जो शुभही चारित्रको, जाने शिवपदहेत ।
तो वह कबहुं न पाय है, अमल निजातम चेत ॥२२॥

(१२)

हरिगीतिका ।

दरब--गुन--परजायकरि, अरहंतको जो जानई ।
घातिदल दलमल सकल, तसु अमलपद पहिचानई ॥
सो पुरुष निज नित आत,--मीक सरूपको जानै सही ।
तासके निहचैपनैसों, मोह नाश लहै यही ॥ २३ ॥

मनहरण ।

जैसे बारै बानीको पकायो भयो चामीकर, सर्वथा प्रकार होत शुद्ध निकलंक है । तैसे शुद्ध ध्यानानल जोगतैं करम-मल, नासिके अमल अरहंत जू अटंक है ॥ तिनके दरवमें जु ज्ञानादि विशेषन हैं, तिनहीको गुन नाम भाषत निशंक है। एक समै मात्र कालके प्रमान चेतनके, पर्नतिको भेद परजाय सो अवंक है ॥ २४ ॥

ऐसे द्रव्य गुन परजाय अरहंतजूको, प्रथम अपाने मन-माहिं अवधारै है । पीछे निज आतमको ताही भांति जानिकै, अभेदरूप अनुभव दशा विसतारै है ॥ त्रिकालके जेते पर-

जाय गुन आतमाके, तेते एकै कालमाहिं ध्यावत उदारै है। ऐसे जब ध्याता होय ध्यावै निज आतमाको, वृंदावन सोई मोह कर्मको विदारै है ॥ २५ ॥

जैसे कोऊ मोतिनिको हार उर धारै ताको, भेद छांड़ि शोभाको अभेदसुख लेत है। तैसे अरहंतके समान जान आपरूप, अभेद सरूप अनुभवत सचेत है ॥ चेतना परजंक प्रवाहतें अभेद ध्यावै, तथा चिदप्रकाशगुनहूको गोपि देत है। केवल अभेद आतमीक सुख वेदै तहां, करता करम क्रिया भेद न धरेत है ॥ २६ ॥

जैसें चोखे रत्नकी अकंप निर्मल प्रकाश, तैसें चिदप्रकाश तहां निश्चल लहत है। जब ऐसी होत है अवस्था तब भेद छेद, चेतनता मात्र ही सुभावको गहत है ॥ मोह अंधकार तहां रहै कौनके अधार, भानुको उजास तथा तिमिर दहत है। यही है उपाय मोह वाहिनीके जीतिवेको, वृन्दावन ताको शरनागत चहत है ॥ २७ ॥

(१३)

माधवी।

जिस जीवके अंतरतें तिहुंरतर, दूर भया यह मोह मलाना।
निज आतमतत्त्व जथारथको, तिनके भई प्रापति वृंद निधाना॥
जदि जो वह रागरु दोष प्रमाद, कुभावहुको तजि देत सयाना।
तदि सो वह शुद्ध निजातमको, निहचै करि पावत है परधाना॥

दोहा।

यातैं मोह निवारिके, पायौ करि बहु जत्न।
आतमरूप अमोल निधि, जो चिन्तामणि रत्न॥ २९
ताके अनुभवसिद्धके, बाधक रागरु दोष।
इनहूंको जब परिहरै, तब अनुभवसुख पोष॥ ३०॥
नाहीं तो ये चोर ठग, लूटैं अनुभव रत्न।
फिर पीछे पछिताय है, तातैं करु यह जत्न॥ ३१॥
सावधान वरतौ सदा, आतमअनुभवमाहिं।
रागद्वेषको परिहरो, नहिं तो ठग ठगि जाहिं॥ ३२॥

(१४)

मनहरण।

ताही सुविधान करि तीरथेश अरहंत, सर्व कर्म शत्रुनिको मूलतैं विदारी है। तिसी भांति देय उपदेश भव्य वृंदनिको, आप शुद्ध सिद्ध होय वरी शिवनारी है॥ सोई शिवमाला विराजतु है आज लगु, अनादिसों सिद्ध पंथ यही सुखकारी है। ऐसे उपकारी सुखकारी अरहंतदेव, मनवचकाय तिन्हैं वन्दना हमारी है॥ ३३॥

(१५)

मनहरण।

जीवको जो दव्वगुनपर्जविषैं विपरीत, अज्ञानता भाव सोई मोह नाम कहा है। कनैकके खाये वउरायेके समान

१ धतूरा।

जाय गुन आतमाके, तेते एकै कालमाहिं ध्यावत उदारै है। ऐसे जब ध्याता होय ध्यावै निज आतमाको, वृंदावन सोई मोह कर्मको विदारै है ॥ २५ ॥

जैसे कोऊ मोतिनिको हार उर धारै ताको, भेद छांड़ि शोभाको अभेदसुख लेत है। तैसे अरहंतके समान जान आपरूप, अभेद सरूप अनुभवत सचेत है ॥ चेतना परजके प्रवाहतैं अभेद ध्यावै, तथा चित्प्रकाशगुनहूको गोपि देत है। केवल अभेद आतमीक सुख वेदै तहां, करता करम किया भेद न धरेत है ॥ २६ ॥

जैसें चोखे रतको अकंप निर्मल प्रकाश, तैसें चित्प्रकाश तहां निश्चल लहत है। जब ऐसी होत है अवस्था तब भेद छेद, चेतनता मात्र ही सुभावको गहत है ॥ मोह अंधकार तहां रहै कौनके अधार, भानुको उजास तथा तिमिर दहत है। यही है उपाय मोह वाहिनीके जीतिवेको, वृन्दावन ताको शरनागत चहत है ॥ २७ ॥

(१३)

माधवी।

जिस जीवके अंतरतै तिहुंरतर, दूर भया यह मोह मलाना।
निज आतमतत्त्व जथारथको, तिनके भई प्रापति वृंद निधाना॥
जदि जो वह रागरु दोष प्रमाद, कुभावहुको तजि देत सयाना।
तदि सो वह शुद्ध निजातमको, निहचै करि पावत है परधाना॥

...त देखि, द्वेषकरि सनमुखधावत ।
...य कूपमाहिं, परि संकट पावत ॥
...ग अरु द्वेष पुनि, बंध दशाको प्रगट फल ।
...रि निजपरपरखि, तजहु त्रिकंटक मोह मल॥३७

दोहा ।

...पदेशको, सुनो मूल सिद्धंत ।
...अरु द्वेषकौ, करौ भली विधि अंत ॥ ३८ ॥

(१७)

दुमिला ।

...पदारथको, गहिकैं निहचै सरधा करिवो ।
...मता करिकै, अपने मनमैं करुना धरिवो ॥
... मद इष्ट अनिष्ट, विभावप्रसंगनिको भरिवो ।
...हको जानि भले, मिल्यौं जोग है जोग इन्हैं हरिवो॥

दोहा ।

... यह मोहके, सुगुरु दई दरसाय ।
...न' अब चूक मति, जड़तैं इन्हैं खपाय ॥ ४० ॥

(१८)

मनहरण ।

... आदिक प्रमानरूप ज्ञानकरि, सरवज्ञकथित
...ने है । सत्यारथरूप सर्व पदारथ 'वृंदावन'

होय, जथारथज्ञान सरधान नाहिं लहा है ॥ ताही दृगमो-हतैं अछादित हो चिदानंद, पर द्रव्यहीको निजरूप जानि गहा है। तामें रागद्वेषरूप भाव धरैं घाय घाय, याहीतैं जगतमें अनादिहीसों रहा है ॥ ३४ ॥

अनादि अविद्यातें विसारि निजरूप मूढ़, परदर्वे देहादि-को जानैं रूप अपना। इष्टानिष्ट भाव परवस्तुमें सदैव करै, वे तो ये सरूप याकी झूठी है कलपना ॥ जथा नदीमाहिं पुल पानीकी प्रवलतासों, दोय खंड होत तथा भावकी जल-पना। एकै मोह त्रिविध त्रिकंटक सुभाव धरै, झूठी वस्तु सांची दरसावै जथा सपना ॥ ३५ ॥

(१६)

छप्पय।

मोह भावकरि तथा, राग अरु दोष भावकर।
जब प्रनवत है जीव, तबहि बंधन लहंत तर ॥
विविधभांतिके भेद, तासु बंधनके भाखे।
जाके फल संसार, चतुर्गतिमें दुख चाखे ॥
तातैं मोहादित्रिभावकों, सत्तासों अब छय करौ।
है जोग यही उपदेश सुनि, भविक वृंद निज उर धरौ ॥३६

पुनः। दृष्टान्त—

जथा मोहकरि अंध, वनजे गज मत्त होत जब।
आलिंगन जुतप्रीति, करिनिको घाय करत तब ॥

१ दर्शन मोहिनीसे। २ जंगली हाथी। ३ हस्तिनी।

तहां और गज देखि, द्वेषकरि सनमुखधावत ।
तृणछादित तब कूपमाहिं, परि संकट पावत ॥
यह मोह राग अरु द्वेष पुनि, बंध दशाको प्रगट फल ।
गजपर निहारि निजपरपरखि, तजहु त्रिकंटक मोह मल॥३७

दोहा ।

तातैं इस उपदेशकौ, सुनो मूल सिद्धंत ।
मोह राग अरु द्वेषकौ, करौ भली विधि अंत ॥ ३८ ॥

(१७)

द्रुमिला ।

अजथारथरूप पदारथको, गहिकै निहचै सरधा करिवो ।
पशुमानुषमें ममता करिकै, अपने मनमें करुना धरिवो ॥
पुनि भोगविषैं मह इष्ट अनिष्ट, विभावप्रसंगनिको भरिवो ।
यह लच्छन मोहको जानि भले, मिल्यौ जोग है जोग इन्हैं हरिवो॥

दोहा ।

तीन चिह्न यह मोहके, सुगुरु दई दरसाय ।
'वृन्दावन' अब चूक मति, जड़तैं इन्हैं खपाय ॥ ४० ॥

(१८)

मनहरण ।

परतच्छ आदिक प्रमानरूप ज्ञानकरि. सरवज्ञकथित जो आगमतैं जानै है । सत्यारथरूप सर्व पदारथ 'वृंदावन' ताको सरधान ज्ञान हिरदैमें आनै है ॥ नेमकरि ताको मोह

भरिकै । जो तू मोह नासिके अबाध सुख चाहै तौ आपहीमें आप देख ऐसे ध्यान धरिकै ॥ ४७ ॥

दोहा ।

दरवनिमें दो भांतिके, गुन वरतंत सदीव ।
है सामान्यसरूप इक, एक विशेष अतीव ॥ ४८ ॥
तामें आतमरसिक जन, गुन विशेष उरधार ।
द्रव्यनिको निरधार करि, सरधा धरैं उदार ॥ ४९ ॥
एकछेत्रअवगाहमें, हैं षड्द्रव्य अनाद ।
निज निज सत्ताको धरैं, जुदे जुदे मरजाद ॥ ५० ॥
ज्योंका त्यों जानों तिन्है, तामेंसों निजरूप ।
भिन्न लखौ सब दर्वतें, चिदानंद चिद्रूप ॥ ५१ ॥
ताके अनुभवरंगमें, पगो 'वृंद' सरवंग ।
मोह महारिपु तुरत तब, होय मूलतैं भंग ॥ ५२ ॥

(२३)

मनहरण ।

सत्ता सनबंध दोय भांति है दरवमाहिं, सामान्य विशेष जो कुतर्कसों अबाध है । जैसे वृच्छजातितैं समान सर्व वृच्छ और, आमनिंब आदितैं विशेषता अगाध है॥ तैसें सत्ता भावकरि सव्व दव्व अस्ति औ, विशेष सत्ता लियैं सब जुदे निरुपाध है । साधु होय याको जो न निहचै प्रतीत करै, ताकों शुद्ध धर्मको न लाभ सो न साध है ॥ ५३ ॥

नरेन्द्र ।

यों सामान्य-विशेष-भावजुत, दरवनिको नहिं जानै ।
स्वपरभेदविज्ञान विना तब, निज निधि क्यों पहिचानै ॥
तो सम्यक्त भाव विनु केवल, दरवलिंगको धारी ।
तप संजमकरि खेदित हो है, बरै नाहिं शिवनारी ॥५४॥

मनहरण ।

जैसें रजसोधा रज सोधत सुवर्न हेत, जो न ताहि सोनाको पिछान उरमाहीं है । तौ तो खेद वृथा तैसें यहां भेदज्ञान विनु, सुपर पिछानें मुनिमुद्रा जे धराहीं है ॥ तप संजमादिक कलेश करै कायकरि, सो तो शुद्ध आतमीक धर्म न लहाही है । ताके भावरूप मुनिमुद्रा नाहिं वृंदावन, ऐसे कुंदकुंद स्वामी विदित कहा ही है ॥ ५५ ॥

चौपाई ।

प्रथमहिं श्रीगुरुदेव कहा था । "उवसपयामी सम्मं" गाथा ।
ताकरि साम्यभाव शिव कारन । यह निहचै कीन्हों उर धारन ॥
फिर कहि सुगुरु सुहित अभिलाष॥ "चारित्तं खलुधम्मो" भाषा॥
जोई सामभाव थिर धर्म । शुद्धपयोगरूप सो धर्म ॥ ५७ ॥
पुनि गुरुदेव कही करि करुना।'परिणमदि जेण दव्व'विवरुना ।
ताकरि सामभाव सोई आतम। अति एकतामई परमातम॥५८
फिर गुरु दीनदयाल उदारा । 'धम्मेण परिणदप्प' उचारा ।

१-चौथा गाथा । २-७ वां । ३-८ वां गाथा ४-ग्यारहवां गाथा ।

दोहा।

यों सामान्यजिनराजपद, शुद्ध चिदानंदकंद।
सपरभेदस्त्वअधिकार यह, पूरन भयो अमंद ॥ ६४ ॥

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनअग्रवाल गोइलगोत्री काशीवासिकृत भाषामें तीसरा ज्ञानतत्त्व अधिकार सम्पूर्ण भया।

संवत् १९०५ कार्तिकशुक्ला द्वादशी बुधवासरे वृन्दावनने ... , प्रथम प्रति है, सो जयवंती वरतौ। श्रीरस्तु।

---

१ दूसरी प्रतिमें भी इसी ... है।

ओ नमः सिद्धेभ्यः

अथ चतुर्थ-ज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

तत्र इष्टदेववन्दना ।

दोहा ।

वन्दों श्रीसर्वज्ञ जो, वर्जित सकलविकार ।
विघनहरन मंगलकरन, मनवांछित-दातार ॥ १ ॥
ज्ञेयतत्त्वके कथनका, अब अधिकार अरंभ ।
श्रीगुरु करत दयालचित, त्यागि मोह मद दंभ ॥ २ ॥
कुंदकुंद गुरुदेवके, चरनकमल सिर नाय ।
वृंदावन भाषा लिखत, निज परको सुखदाय ॥ ३ ॥

(१)

मनहरण ।

जेते ज्ञानगोचर पदारथ हैं तेते सर्व, दर्व नाम निहचैसों पावैं सरवंग हैं। फेरि तिन द्रव्यनिमें अनंत अनंत गुण, भाषे जिनदेव जाके वचन अभंग हैं ॥ पुनि सो दरव और गुननिमें वृंदावन, परजाय जुदी जुदी वसैं सदा संग हैं। ऐसी दोई भांति परजायको न जानै जोई, सोई मिथ्यामती परसमयी कुढंग हैं ॥ ४ ॥

विशेषवर्णन-दोहा ।

ज्ञेय पदारथ है सकल, गुन-परजैसंजुक्त ।
तातैं दरव कहावहीं, यह जिनवरकी उक्त ॥ ५ ॥

गुन कहिये विस्तारकों, जो चौड़ाईरूप।
संग वसत नित दरवके, अविनाभावसरूप ॥ ६ ॥
परजैकों आयत कहैं, ज्यों लम्बाई होय।
घटै बढ़ै क्रमसों रहै, भेद तासुके दोय ॥ ७ ॥
एक दरव परजाय है, गुनकी परज दुतीय।
दो दो भेद दुहूनमें, सुनो समरसी जीय! ॥ ८ ॥

अथ पर्यायभेदकथन-मनहरण।

दर्वकी परज दोय भांति यों कथन करी, एक है समान-जाति दूजी असमान है। पुग्गलानु अनेकको खंध सो समान-जाति, जीव पुदगल मिलें असमानवान है ॥ गुनहूकी दोय परजाय एक सुभाविक, षटगुनी हानि-वृद्धि जथा जोग ठान है। दूसरो विभाव वरनादि गुन खंधविषैं, ज्ञानादिक पुग्गलके जोग ज्यों मलान है ॥ ९ ॥

वस्त्रहीको पाट जोड़ें होतु है समानजाति, तथा पुग्गलानु मिलें खंध परजाय है। रेशमी कपासी मिलें होत असमान चीर, तथा देह जीव पुदगल मिले पाय है ॥ जथा वस्त्र सेत है सुभाव गुन परजाय, तथा षटगुनी हानि-वृद्धि भेद गाय है। परके प्रसंगसे तरंग ज्यों विभाव त्यों ही, ज्ञानादि परके संग विभाव कहाय है ॥ १० ॥

कवित्त। (३० मात्रा)

इहि विधि दरवनिके गुन परजै, भनी जिनागममें तहकीक।
भेदज्ञानकरि भविक वृंद दिढ़, सरधा रुचिसों धरै अधीक ॥

मिथ्यामती न जानै याकों, एक एक नय गहै अटीक।
शिवहित हेत अफल करनी तसु,"पीटै मूढ़ सांपकी लीक"११

(२)

पद्धरि ।

जे अज्ञानी जीव, देहहीमें रति राचे।
अहंकार ममकार धरे, मिथ्यामद माचे॥
तिनहीको परसमय नाम, भगवंत कहा है।
अरु जो आतमभावविषै, लवलीन रहा है॥
तिन आतमज्ञानी जीवको, स्वसमयरत जानो सही।
वह चिद्विलास निजरूपमें, रमत वृंद निज निधि लही॥१२॥

मनहरण ।

अनादि अविद्यातें आच्छादित है सांचो ज्ञान, जसमान देहहीको जानै रूप अपना। नाना नियक्रियामाहिं अहंममकार करै, सोई परसमै ताकी सूठी है जलपना॥ जिनके स्वरूपज्ञान भयो है जथारथ सों, मिटी मोह राग दोषभावकी कलपना। एकरूप ज्ञानजोति जगी है अकंप जाके, सोई स्वसमयको न भवताप तपना॥ १३॥

(३)

काव्य ।

जो स्वभाव नहिं तजै, सदा अस्तित्व गहै है।
औ उतपत व्यय ध्रौव्य,–सहित सम काल रहै है॥

पुनि अनंतगुणरूप, तथा जो परज नई है ।
ताहीको गुरुदेव, दरव यह नाम दई है ॥ १४ ॥

सोरठा ।

गुन है दोय प्रकार, इक सामान्य विशेष इक ।
सुनि समुझो निरधार, सरधा धरि भवदधि तरो ॥ १५॥

मनहरण ।

अस्ति नास्ति एकानेक दर्वत्त[1] परजवत्त[2], सर्वासर्वगत सप्रदेशी अप्रदेशी है । मूरत अमूरत सक्रिया औ अक्रियावान, चेतन अचेतन सकर्त्ता कर्त्ता तेसी है ॥ भोगता अभोगता अगुरुलघु ए समान, दर्वनिके गुन वृंद गुरु उपदेशी है । अवगाह गति थिति वर्तना मूरतवंत, चेतनता गुन कहे लच्छन विशेषी है ॥ १६ ॥

दोहा ।

दरवनिके अरु गुननिके, परनतिके जे भेद ।
सो परजाय कहावई, समुझो भवि भ्रमछेद ॥ १७ ॥

मनहरण ।

उतपाद वैय[3] ध्रुव[4] गुन परजाय यही, लच्छनको धरै द्रव्य लच्छ नाम पावै है । ताहि उतपादादि औ गुन परजायहीतैं, लखिये है यातैं यह लच्छन कहावै है ॥ करतार[5] सार्धन[6] अंधार[7] दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिता लहावै है ।

---

१ द्रव्यत्व-द्रव्यपना । २ पर्यायवत्व-पर्यायपना । ३ व्यय-नाश । ४ ध्रौव्य । ५ कर्त्ता । ६ करण । ७ अधिकरण ।

लच्छ और लच्छनमें जदपि विविच्छाभेद, तथापि सरूपतैं अभेद ठहरावै है ॥ १८ ॥

(४)

दर्वका सरवकालमाहिं असतित्व सोई, निहचैसौं मूलभूत सहज सुभाव है । सोई निज गुण औ स्वकीय नाना पर्जकरि, औ उतपाद व्यय ध्रौवता लहाव है ॥ करतार साधन अधार दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिताकों पाव है । द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि सदा एक ही है, साधिवेके हेत लच्छ लच्छन जनाव है ॥ १९ ॥

जैसे द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि कंचनतैं, पीततादि गुन पैर्जे कुंडल न जुदे हैं । करतार साधन अधार याको हेमै ही है, जातैं हेमसत्ता विना इनको न उदै है । कुंडलको नाश उतपाद होत कंकनको, हेमद्रव्य ध्रौव्य गुन पीतादि समुदै है । तैसे सर्व दर्व निज गुन परजाय तथा, उतपाद व्यय ध्रुव सहित प्रमुदै है ॥ २० ॥

दोहा ।

दरव स्वगुनपरजायकरि, उतपत-वय-ध्रुव-जुत्त ।
रहत अनाहतरूप नित, यहीं सरूपास्तित्त ॥ २१ ॥
पर दरवनिके गुन परजै, तिनसौं मिलवौ नाहिं ।
निज स्वभावसत्ताविषैं, मगनमन सदा कराहिं ॥ २२ ॥

१ जिसका लक्षण किया जावे । २ पर्याय । ३ सुवर्ण-सोना । ४ सरूपास्तित्व । ५ पर्याय ।

(५)

मनहरण।

नाना परकार यहां लच्छनके भेद राजैं, तामें एक सत सर्व दर्वमाहिं व्यापै है । ऐसे सरवज्ञ वस्तुको स्वभाव धर्म कह्यो, जो सरव दर्वको सदृशकरि थापै है ॥ जैसे वृच्छ जातिकी सदृश और सत्ता और, लच्छन विशेषकरि जुदी २ तापै है । मुख्य गौन द्वारतैं अदोष वृंद सर्व सधै, सामान्य विशेष धर्मधारी दर्व आपै है ॥ २३ ॥

दोहा।

सहजस्वरूपास्तित्वकरि, जुदे जुदे सब दर्व ।
निज निज गुन लच्छन धरैं, है विचित्र गति पर्व ॥२४॥
अरु सादृश्यास्तित्वकरि, सब थिर थपन अबाध ।
सत लच्छनके गहनतैं, यही एक निरुपाध ॥ २५ ॥
तिहूँकालमें जासको, बाधा लगै न कोय ।
सोई सतलच्छन प्रबल, सब दरवनिमें होय ॥ २६ ॥

(६)

मनहरण।

अपने सुभावहीसों स्वयंसिद्ध द्रव्य नित, निजाधार निजगुणपरजको मूल है । सोई है सत्तास्वरूप ऐसे जिन-भूप कह्यौ, तत्त्वभूत वस्तुको स्वभाव अनुकूल है ॥ द्रव्यको स्वभावरूप सत्ता गुन 'वृंदावन, प्रदेशतैं भेद नाहिं दोऊ

समतूल है। आगम प्रमान जो न करै सरधान याको, सोई परसमयी मिथ्याती ताकी मूल है॥ २७॥

दोहा।

जदपि जीव पुदगल मिलै, उपजहिं बहु परजाय।
तदपि न नूतन दरवकी, उतपति बरनी जाय॥ २८॥

मनहरण।

द्रव्य गुनखान तामें सत्ता गुन है प्रधान, गुनी गुनको यहां प्रदेशभेद नाहीं है। संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतैं द्रव्यमाहिं, कथंचित भेद पै न सर्वथा कहाहीं है॥ दंडके धरेतैं जैसे दंडी तैसे यहां नाहिं, यहांतो सरूपतैं अभेद ठहराहीं है। दर्वको सुभाव है अनंत गुनपर्जवंत, ताको सांचो ज्ञान भेदज्ञानी वृंदपाहीं है॥ २९॥

जब परजायद्वार दरव विलोकिये तौ, गुनी गुन भेदनिकी उठत तरंग है। और जब दर्वदिष्ट देखिये तौ गुनीगुन, भेदभाव डूबे रहै एक रस रंग है॥ जैसे सिन्धुमाहिं भेद जदपि कलोलनितैं, निहचै निहारैं वारि सिंधुहीको अंग है। तैसे दोनों नैनके समान दोनों नयननितैं, वस्तुको न देखै सोई मिथ्याती कुढंग है॥ ३०॥

(७)

आपने सुभावपरनतिविषै सदाकाल, तिष्ठतु है सत्तारूप वस्तु सोई दर्व है। द्रव्यको जो गुनपरजायविषैं परिनाम, निश्चैकरि ताहीको स्वभाव नाम सर्व है॥ सोई ध्रुव उतपाद

वय इन भावनिवैं, सदा सनबंधजुत राजत सुपर्व है। ऐसी एकताई कुंदकुंदजी बताई वृंद, बन्दतु है तिन्हें सदा त्यागि उर गर्व है ॥ ३१ ॥

विशेषवर्णन। चौपाई।

दरवनिको गुनपरजयरूप। जो परिनाम होत तद्रूप।
ताको नाम सुभाव मनंत। सो ध्रुव-उतपत-वयजुत तंत ॥३२॥
एक दरवके जथा कहेस। चौड़े सूक्ष्म अनेक प्रदेश ॥
त्यौं मनवनरूपी परवाह। लंबाई क्रमसहित अथाह ॥ ३३ ॥

मनहरण।

दर्वनिके परदेश चौड़ाई समान कहे, जातैं ये प्रदेश सदाकाल स्थायीरूप हैं। पर्नेत प्रवाह ताकी क्रमहीतैं होत तातैं, लंबाई समान याको सुगुरु प्ररूप हैं॥ जेते हैं प्रदेश ते ते निज निज थानहीमें, पुव्वकी अपेच्छा उतपन्नमान भूप हैं। आगेकी अपेच्छा व्ययरूप औ दरव एक, सर्वमाहि यातैं ध्रुव अचल अनूप है ॥ ३४ ॥

दोहा।

या प्रकार परदेशको, उतपत वय ध्रुव जान।
जथाजोग सरधा धरो, अब सुन और बखान ॥ ३५ ॥

मनहरण।

जैसे परदेशनिको त्रिधारूप सिद्ध करी, तैसे परिनामहूको ऐसे भेद कहा है। पहिले समैके परिनाम उतपाद-

रूप, पीछेकी अपेच्छा सोई वयभाव गहा है ॥ सदा एक दर्वके अधार परवाह वहै, तातैं द्रव्य द्वारतैं सो ध्रौव्य सरदहा है । ऐसे उतपाद वय ध्रुवरूप परिनाम, दर्वको सुभाव निरुपाध सिद्ध लहा है ॥ ३६ ॥

जैसे मुकताफलकी माला सूतमाँहि पोयें, तेजपुंज मंजु नाना मोतिनिकी दाना है । पुव्व पुव्व दानेकी अपेच्छा आगे आगेवाले, उतपाद पाछेवाले वयकरि माना है ॥ एकै सूत सर्वमाहिं तासकी अपेच्छा ध्रुव, तैसें दर्वमाहिं तीनों साधत सयाना है । ऐसे नित्यानित्य लच्छ लच्छन अबाध सधै, धन्य जैनबैन स्यादवाद जाको बाना है ॥ ३७ ॥

(८)

मत्तगयन्द ।

भंग विना न वनै कहुं संभव, संभव हू विन भंग न हो है ।
जो निहचै विनु ध्रौव पदारथ, त्यौ उतपाद कहूं नहिं सोहै ॥
ज्यों मृतपिंडतैं कुंभ वनै, ध्रुव दर्व दोऊमहँ एकहि हो है ।
त्यों सब दर्व त्रिघातम लच्छन, जानत वृंद विचच्छन जो है॥३८

चौपाई ।

वय विनु नाहिं होत उतपादं । उतपत विना न व्यय मरजादं ।
उतपत वय विनु ध्रौव्य न होई।ध्रुव बिन उतपत वय हु न जोई३९

१ व्यय (नाश) । २ उत्पाद ।

तातैं जो उतपत्त सोई वै[1] । जोई नाश सोई उतपत है ॥
जो उतपत वय है ध्रुव सोई। जो ध्रुव सो उतपत व्यय होई ॥४०॥

मनहरण ।

जैसे मृतपिंडको[2] विनाश कुंभ[3] उतपाद, दोनों परजाय धरे दर्व ध्रुव देखिये। विना परजाय कहूं दर्व नाहिं सरवथा, द्रव्य विना परजाय हू न कहूं पेखिये ॥ तातैं उतपादादि सरूप दर्व आपही है, स्वयंसिद्ध भली भांति सिद्ध होत लेखिये। यामें एक पच्छ गहैं लच्छ लच्छ दोष लगैं, वृंदावन तातैं त्रिधा लच्छन परेखिये ॥ ४१ ॥

षट्पद ।

केवल ही उतपाद कहैं, दो दूषन गाजै ।
उपादान कारन-विहीन, घट कर्म न छाजै ॥
ध्रौव्य वस्तु विनु जो मूरख, उतपाद बतावै ।
सो अकाशके फूल, बांझसुत मौर बनावै ॥
जो केवल ही वय मानिये, तौ उतपति विनु नास किमि ।
पुनि ध्रौव्यवस्तुके नासतैं, ज्ञानादिक गुन नास तिमि ॥ ४२॥
जो केवल ध्रुव ही प्रमान, इक पच्छ मानिये ।
तो दो दूषन तासमाहिं, परतच्छ जानिये ॥
प्रथम तास परजाय,-धरमको नाश होत है ।
विनु परजाय न दरव, कहूं निहचै उदोत है ॥

---

१ व्यय-नाश । २ मिट्टीका पिंड । ३ घड़ा ।

छप्पय ।

संजोगिक परजाय, दोय परकार कहा है ।
इक समान जातीय, दुतिय असमान गहा है ॥
पुग्गलानु मिलि खंध, होत सोई समान है ।
जिय पुदगल मिलि देह, सु तौ असमान मान है ॥
इन परजैके उपजत नसत, दरव न उपजत नहिं नसत ।
नित भाव दशा निज धारिके, सदा एक रस ही लसत॥५३॥

(१२)

मनहरण ।

दरव सयमेव ही सरव काल आपहीसों, गुनसों गुनंतर प्रनवत रहत है । सत्तातैं अभिन्न तातैं गुननिकी परजाय, दर्व ही है निश्चै ऐसे सुगुरु कहत है ॥ जैसे आम हरित बरन गुण त्याग सोई, पीत गुण आप ही सुभावसों लहत है । भौवरूप आम दोउ दशामाहिं वृंदावन, तैसे दर्व सदा त्रिधा लच्छन लहत है ॥ ५४ ॥

(१३)

छप्पय ।

जो यह दरव न होय, आपु सत्ताको धारक ।
तौ तामें ध्रुव भाव, कहा आवै थितिकारक ॥
जो ध्रुवता नहिं धरै, कहो तब दरव होय किमि ।
तातैं सत्तारूप दरव, सयमेव आपु इमि ॥

है दरव गुनी सत्ता सुगुन, सदा एकता भाव धरि ।
परदेश भेद इनमें नहीं, यों भवि वृंद प्रतीत करि ॥५५॥

(१४)

मनहरण ।

जहां परदेशकी जुदागीरूप भेद सो तौ, प्रविभक्त जानों जथा दंडी दंडवान है । संज्ञा लच्छनादितैं दरव सत्तामाहिं भेद, वीरस्वामी ताको नाम अन्यत्व बखान है ॥ द्रव्यके अधार तो अनंत गुन तामें एक, सत्ताहू वसत सु विशेषन प्रमान है । सत्तामाहिं नाहिं और गुनको निवास वृंद, ऐसे द्रव्य सत्तामें विभेद ठहरान है ॥ ५६ ॥

जैसे वस्त्र द्रव्य सेत गुनको धरै है आपु, जदपि प्रदेश एक तदपि विभेद है । वस्त्रको तो बोध फरसादि इन्द्रीहूतैं होत, पै सुपेद गुन नैन द्वारहीतैं वेद है ॥ वस्त्रतैं सुपेद गुन जुदो जो न मानै तौ, फरस आदि इंद्री क्यों न जानत सुपेद है । ऐसे दर्व गुनमें हैं भेद संज्ञालच्छनतैं, नाना भांति साधै स्यादवादी ही अखेद है ॥ ५७ ॥

दोहा ।

सत्ता दरवविषैं सुगुरु, ज्यों प्रदेश नहिं भेद ।
त्यों सरूपहूकेविषैं, कीजे भेद निखेद ॥ ५८ ॥

छप्पय ।

सत्ता दरवविषैं विभेद, कहु क्यों न मानियै ।
दरवविषैं गुनगन अनंत, थिति पृथक जानियै ॥

निजाधार है दरब, विविध परजायवंत है।
गुनपरजै सब जुदे जुदे, जामें वसंत है।
औ सत्ता दरवाधीन है, तासुमाहिं नहिं अपर गुन।
है एक विशेषन दरवको, तातैं भेद अवश्य सुन॥ ५९॥

(१५)

सत्ता तीन प्रकारसहित, विस्तार कहा है।
दरवसत्त गुनसत्त, सत्त परजाय गहा है॥
जो तीनोंके माहिं, परस्पर भेद विराजै।
सोई है अन्यत्व भेद, इमि जिन धुनि गाजै॥
है दरवसत्त गुन-परज-गत, गुनसत एक सुधरम-रत।
परजायसत्त क्रमको धरै, यातैं भेद प्रमानियत॥ ६०॥

मनहरण।

जैसे एक मोतीमाल तामैं तीन भांत सेत, सेतैं[1] हार सेत सूत सेतरूप मेनिया[2]। तैसे एक दर्वमाहिं सत्ता तीन भांत सोहै, दर्वसत्ता गुनसत्ता पर्जसत्ता मनिया॥ दरवकी सत्ता है अनंत धर्म सर्वगत, गुनकी है एक ही धरमरूप गनिया। परजकी सत्ता क्रमधारी ऐसी भेदाभेद, साधी मुनि वृंद श्रुत-सिंधुके मथनियौं[3]॥ ६१॥

(१६)

दर्व जो है अनंत धरमको आधारभूत, सो न गुन होत यौं

[1] श्वेत-सफेद। [2] गुरिया। [3] मथनेवाले।

विचार उर रखिये। तथा जो है गुन एक धर्म निजरूप करि, सोऊ दर्व नाहीं होत निहचै निरखिये ॥ ऐसे गुन गुनीमें विभेद है सुरूप करि, सर्वथा जुदागी न अभाव ही करखिये। द्रव्य और गुनमें विभेद विवहार तैसो अनेकांत पच्छसों विलच्छके हरखिये ॥ ६२ ॥

दोहा।

दरव और गुनकेविषें, है अन्यत्वविभेद।
जुदे दोउ नहिं सरवथा, श्रीगुरु करी निपेद ॥ ६३ ॥

मनहरण।

गुनगुनीमाहिं सरवथा ही अभावरूप, भेद माने दोनोंहीको नाम सरवथा है। जातैं जेते गुन तेते जुदे जुदे दर्व होई, सोऊ बात सधै नाहिं कहिवौ विकथा है ॥ गुनीके अभाव भयें गुनको अभाव होत, सोनेमाहिं साधि देखो साधी साध जथा है। तातैं व्यवहारतें कथंचित विभेद मानो, वस्तुसिद्धिहेत श्रुतिमाहिं जथा मथा है ॥ ६४ ॥

(१७)

द्रव्यको सुभाव परिनाम जु है निश्चैकरि, अस्तित सरूप सोई सत्ता नाम गुन है। सर्व गुनमें प्रधान फहरै निशान जाको, उतपादवयध्रुवसंजुत सुगुन है ॥ ताही असतित्वरूप सत्तामें विराजै दर्व, यातैं सत नाम द्रव्य पावत अपुन है। ऐसे सत्ता गुन औ दरव गुनी एकताई, साधी कुंदकुंद वृंद वंदत निपुन है ॥ ६५ ॥

(१८)

कुंडलिया।

ऐसो गुन कोऊ नहीं, दरव विना जो होय।
विना दरव परजाय हू, जगमें लखै न कोय॥
जगमें लखै न कोय, बहुरि दिढ़तर ऐसे सुन।
दरवहिका अस्तित्वभाव; सोई सत्ता गुन॥
तिस कारन स्वयमेव, दरव सत्ता ही है सो।
अनेकांततैं सधत, वृंद निरदूपन ऐसो॥ ६६॥

(१९)

छप्पय।

या विधि सहजसुभावविषैं, जो दरव विराजै।
सो दरवौ परजाय, दोउ नयमय छवि छाजै॥
दरवार्थिकनयद्वार, सदा सदभावरूप है।
परजद्वारतैं असदभाव, सोई प्ररूप है॥
इन दो भावनिसंजुक्त नित, उतपत होत बखानिये।
नयद्वार विविच्छाभेद है, वस्तु अभेद प्रमानिये॥ ६७॥

दोहा।

दो प्रकार उतपादजुत, दरव रहत सब काल।
सद उतपाद प्रथम कह्यो, दुतिय असतकी चाल॥६८॥
दरव अनादि अनंत जो, निज परजैकेमाहिं।
उपजत है सो दरवद्रग, सद उतपाद कहाहिं॥ ६९॥

जो पूरव ही थो नहीं, ताको जो उतपाद ।
सो परजय-नयद्वारतें, असदभाव निरवाद ॥ ७० ॥

(२०)

मनहरण ।

जीव दर्व आपने सुभाव भनवंत संत, मानुष अमर वा अपर पर्जे धारैगो । तिन परजायनिसों नानारूप होय तऊ, कहा तहाँ आपनी दरवशक्ति छाँरैगो ॥ जो न कहूं आपनी दरव शक्ति छाँड़े तव, कैसे और रूप भयो निहचै विचारैगो । ऐसे दर्व शक्ति नानारूप परजाय व्यक्त, जथारथ जाने वृन्द सोई आप तारैगो ॥ ७१ ॥

(२१)

एक परजाय जिहिकाल परिनवै जीव, तिहिकाल और परजायरूप नाहीं है । मानुष परज परिनयौ तव देव तथा, सिद्धपरजाय तहाँ कहां ठहराही है ॥ देव परजायमें मनुपसिद्ध पर्जे कहां ऐसे परजायद्वार भेद विलगाही है । या प्रकार एकता न आई तव कैसे नाहिं, पर्जेद्वार नाना नाम दरवलहाही है ॥ ७२ ॥

(२२)

दर्वार्थिकनय नैन खोलकर देखिये तो, सोई दर्व और रूप भयो नाहिं कवही । फेर परजाय नय नैनतैं निहारिये तो, सोई नानारूप भयो जैसो पर्जे जवही ॥ जातैं नर नारकादि

काय जिहि काल लहै, तासों तनमई होय रहै तैसो तमही।
जैसे आगि एकपै प्रवेश नाना ईंधनमें, ईंधन अकारतें भयो है
भेद सबही ॥ ७३ ॥

(२३)

छप्पय।

दरव कथंचित अस्तिरूप, राजै इमि जानो।
बहुर कथंचित नास्तिरूप, सोई परमानो॥
होत सोइ पुनि अवक्तव्य, ऐसे उर धरनी।
फिर काहू परकार सोइ, उभयातम वरनी॥
पुनि और सुभंगनिकेविषै, जथाजोग सोई दरव।
निरबाध वसत निजरूपजुत, श्रीगुरु भेद भने सरव॥७४॥

मनहरण।

आपनी चतुष्टै दर्व-छेत्र-काल-भावकरि, तिहूंकालमांहि
दरव अस्तित-सरूप है। सोई परद्रव्यके चतुष्टैकरि नास्ति
सदा, फेर सोई एकै काल उभैरूप भूप है॥ एकै काल
नाहिं जात कह्यो तातैं अकथ है, फेर सोई अस्ति अवक्तव्य सु
अनूप है। फेर नास्ति अकथ औ अस्ति नास्ति अकथ है,
कथंचितवानी सो सुधारसको कूप है॥ ७५॥

तथा चोक्तं देवागमकारिकायां—

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्॥ ९॥

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे ।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥ १० ॥
सर्व्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥
अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ॥
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥

दोहा।

एक अरथवाचक शबद, भावअस्ति ये जान ।
कहु अभाव कै नास्ति कहु, दोनों अरथ समान ॥ ७६ ॥
जो पदार्थ सब सर्वथा, गहिये भावहिरूप ।
अरु अभाव सब लोपिये, तौ तित दूषनभूप ॥ ७७ ॥
एक दरव सरवातमक, तब निहचै ह्वै जाय ।
आदि अंत पुनि नहिं बनै, कीजे कोटि उपाय ॥ ७८ ॥
ज्यों माटीमें पुव्व ही, कुंभ नहीं है रोप ।
प्रागभाव याको कहंत, ताको ह्वै है लोप ॥ ७९ ॥
जो प्रध्वंसाभावको, लोप करै तब येह ।
कुंभकर्मको नाश नहिं, औ अनंतता लेह ॥ ८० ॥
जो अन्योन्य अभाव है, धरम दरवकेमाहिं ।
ताहि लोपते सब दरव, एक रूप ह्वै जाहिं ॥ ८१ ॥
जो अत्यंताभाव है, ताहि विलोपैं ठीक ।
दरव न कैसहु सधि सकै, दूषन लगै अधीक ॥ ८२ ॥

तातैं दरवहिकेविषैं, बसै अभाव सुधर्म।
यहां सहज सत्ताविषैं, थापै थिर तजि भर्म ॥ ८३ ॥
धरम अभाव जु वस्तुमें, बसत सोइ सुन मीत।
पर-सरूप नहिं होत है, यह दिढ़ करु परतीत ॥ ८४ ॥
जो अभाव ही सरवथा, मानै वस्तु समस्त।
भाव धरमको लोपिकै, जो सबमें परशस्त ॥ ८५ ॥
तौ ताके मतकेविषैं, ज्ञान तथा सब वैन।
अप्रमान सब ही भये, साधै बाधै केन ॥ ८६ ॥
इत्यादिक दूषन लगैं, तातैं हे भवि वृंद।
वस्तु अनंत धरममई, भाषी श्रीजिनचंद ॥ ८७ ॥
सो सब सातौं भंगतैं, साधो भ्रमतम त्यागि।
अनेकांत रसमें पगो, निज-सरूप अनुरागि ॥ ८८ ॥

(२४)

मनहरण।

ऐसी परजाय कोऊ नाहीं है जगतमें जो, रागादि विभाव विना भई उतपन है। रागादि विभावकिया अफल न होय कहूं, याको फल चारों गतिमाहिं भरमन है ॥ जैसे परमानू रूछ चीकन सुभावहीसों, बंध खंधमाहिं तैसे जानो जग-जन है। जातैं वीतराग आतमीक धर्म धर्म सो तो, बंधफलसों रहित तिहूंकाल धन है ॥ ८९ ॥

(२५)

नाम कर्म आपनै सुभावसों चिदातमाके, सहज सुभावको आच्छाद करि लेत है। नर तिरजंच नैरकौर देवगतिमाहिं, नाना परकार काय सोई निरमेत है॥ जैसे दीप अगनिसुभावकरि तेलको सु--,भाव दूरकरिके प्रकाशित धरेत है। ज्ञानावरनादिकर्म जीवको सुभाव घाति, मनुष्यादि परजाय तैसे ही करेतै है ॥ ९० ॥

(२६)

नामकर्म निश्चै यह जीवको मनुष्य पशु, नारकी सु देवरूप देहको बनावै है। तहां कर्मरूप उपयोग परिनवै जीव, सहज सुभाव शुद्ध कहूं न लहावै है ॥ जैसे जल नीम चंदनादिमाहिं गयौ सो, प्रदेश और स्वाद निज दोनों न गहावै है। तैसे कर्मभाव परिनयौ जीव अमूरत, चिदानंद वीतरागभाव नाहिं पावै है ॥ ९१ ॥

(२७)

छप्पय।

इमि संसारमँझार, दरवके द्वार जु देखा।
तौ कोऊ नहिं नसत, न उपजत यही विशेखा॥
जो परजै उतपाद होत, सोई वय हो है।
उतपत वयकी दशा, विविध परजयमें सोहै॥

१ नरक और। २ निर्माण करता है, बनाता है। ३ करता है।

धुव दरव स्वांग बहु धारिके, गत गतमें नाचत विगत।
परजयअधार निरधार यह, दरव एक निजरस पगत ॥९२

(२८)

तिस कारन संसारमाहिं, थिर दशा न कोई।
अथिररूप परजैसुभाव, चहुंगतिमें होई ॥
दरवनिकी संसरन क्रिया, संसार कहावै।
एक दशाको त्यागि, दुतिय जो दशा गहावै ॥
या विधि अनादितैं जगतमें, तन धरि चेतन भमत है।
निज चिदानंद चिद्रूपके, ज्ञान भये दुख दमत है ॥९३॥

विशेषवर्णन-मनहरण।

ताहीतैं जगतमाहिं ऐसो कोऊ काय नाहिं, जाको अवधारि जीव एक रूप रहैगो। याको तो सुभाव है अथिररूप सदाहीको, ऐसे सरधान धेरै मिथ्यामत बहैगो ॥ जीवकी अशुद्ध परनतिरूप क्रिया होत, ताको फल देह धारि चारों गति लहैगो। याको नाम संसार बखाने सारथक जिन, जाकी भवथिति घटी सोई सैरदहैगो ॥ ९४ ॥

(२९)

अनादितैं पुग्गलीक कर्मसों मलीन जीव, रागादि विकार भाव कर्मको लहत है। ताही परिनामनितैं पुग्गलीक दर्व कर्म, आपके प्रदेशनिसों बंधन गहत है ॥ तातैं राग आदिक

१ श्रद्धान करेगा।

विकारभाव भावकर्म, नयो दर्वकरमको कारन कहत है।
ऐसो बंधभेद भेदज्ञानतैं विवेद वृंद, साधी है सिद्धांतमाहिं
सुगुरु महत है ॥ ९५ ॥

प्रश्न–दोहा।

दरव करमतैं भावमल, भाव करमतैं दव्व।
यामैं पहिले कौन है, मोहि बतावो अव्व ॥ ९६ ॥
इतरेतर आश्रय यहां, आवत दोष प्रसंग।
ताको उत्तर दीजिये, ज्यों होवै भ्रम भंग ॥ ९७ ॥

उत्तर।

उत्तर सुनो! अनादितैं, दरवकरमकरि जीय।
है प्रबंध ताको सुगुरु, कारन पुव्व गहीय ॥ ९८ ॥
ताही पूरवबंधकरि, होहि विभाव विकार।
ताकरि नूतन बँधत है, यहाँ न दोष लगार ॥ ९९ ॥
जगदागमहूतैं यही, सिद्ध होत सुखधाम।
जो है करम निमित्त विनु, रागादिक परिनाम ॥ १०० ॥
तो वह सहज सुभाव है, मिटै न कबहूं येव।
तातैं दरवकरम निमित, प्रथम गही गुरुदेव ॥ १०१ ॥
दरवकरम पुदगलमई, पुदगल करता तास।
भावकरम आतम करै, यह निहचै परकास ॥ १०२ ॥

पुनः प्रश्न।

तुम भापत हौ हे सुगुरु, 'जीवकरमसंजोग'।
सो [illegible] हुते, पाछे भयो नियोग ॥ १०३ ॥

जासु नाम 'संजोग' है, ताको तो यह अर्थ ।
जुदी वस्तु मिलि एक है, कीजे अर्थ समर्थ ॥ १०४ ॥

उत्तर-मनहरन ।

जैसे तिलीमांहि तैल आगि है पखानमाहिं, छीरमांहि नीर हेम खानिमें समल है । इन्हें जब कारनतें जुदे होत देखै तब, जानै जो मिलापहूमें जुदे ही जुगल है ॥ तैसेही अनादि पुग्गलीक दर्व करमसों, जीवको संबंध लसै एक थल रल है । भेदज्ञान आदि शिव साधनतें न्यारो होत, ऐसे निरबाध संग सधत विमल है ॥ १०५ ॥

मतांतर । दोहा ।

केई मतवाले कहैं, प्रथम अमल थो जीव ।
माया जड़सों मलिन है, चहुँगति भमत सदीव ॥१०६॥
प्रगट असंभव बात यह, शुद्ध अमल चिद्रूप ।
क्योंकरि बंध दशा लहै, परै केम भवकूप ॥ १०७ ॥
विमलभाव तब बंधको, कारन भयो प्रतच्छ ।
मोच्छ अमलता तब कहो, कैसें सधै विलच्छ ॥ १०८ ॥

(३०)

मनहरण ।

परिनामरूप स्वयमेव आप आतमा है, जातैं परिनाम परिनामीमें न भेद है । सोई परिनामरूप क्रिया जीवमयी होत, आपनी क्रियातैं तनमयता अछेद है ॥ जीवकी जो क्रिया ताको भावकर्म नाम कह्यौ, याको करतार जीव निहचै निवेद

है। तातैं दर्व करमको आतमा अकरता है, याको करतार पुदगल कर्म वेद है ॥ १०९ ॥

प्रश्न-दोहा।

भावकरम आतम करै, यह हम जानी ठीक।
दरवकरम अबको करै, यह संदेह अधीक ॥ ११० ॥

उत्तर-मनहरण।

जैसे भाव कर्मको करैया जीव राजत है, पुग्गल न ताको करै कभी यों पिछानियौ। निज निज भावके दरव सब करता हैं, परके सुभावको न करै कोऊ मानियौ ॥ यह तो प्रतच्छ भेद ज्ञानतें विलच्छ देखो, सबै निज कारजके करता प्रमानियौ। दरव करम पुदगल पिंड तातैं याको, करतार पुग्गल दरव सरधानियौ ॥ १११ ॥

(३१)

सवैया (३१ मात्रा)

आतम निज चेतनसुभावकरि, प्रनवतु है निहचै निरधार।
सो चेतनता तीन भांति है, यों वरनी जिनचंद उदार ॥
ज्ञानचेतना प्रथम वखानी, दुतिय करमचेतना विचार।
त्रितियकरमफलचेतनता है, वृंदावन ऐसे उद्धार ॥ ११२ ॥

(३२)

मनहरण।

जीवादिक सुपर पदारथको भेदजुत, तदाकार एकै काल जानै जो प्रतच्छ है। सोई ज्ञानचेतना कहावत अमलरूप,

वृंदावन तिहूँकाल विशद विलच्छ है ॥ जीवके विभावको अरंभ कर्मचेतना है, दर्वकर्मद्वार जामें भेदनको गच्छ है । सुखदुखरूप कर्मफल अनुभवै जीव, कर्मफलचेतना सो भाषी श्रुति स्वच्छ है ॥ ११३ ॥

(३३)

परिनाम आतमीक आप यह आतमा है, सदा काल एकताई तासों तदाकार है । सोई परिनाम ज्ञान कर्म कर्मफल तीनों, चेतनता होनको समरथ उदार है ॥ याही एकताईतें सुज्ञान कर्म कर्मफल, तीनोंरूप आतमा ही जानो निरधार है । अभेद विवच्छातें दरवहीके अंतरमें, भेद सर्व लीन होत भाषी गैनधार है ॥ ११४ ॥

(३४)

करता कैरन तथा करम करमफल, चारोंरूप आतमा विराजै तिहूँपनमें । ऐसे जिन निहचै कियो है भलीभांतिकरि, एकता सुभाव अनुभवै आपु मनमें ॥ परदर्वरूप न प्रनवै काहू कालमाहिं, लागी है लगन जाकी आतमीक धनमें । सोई मुनि परम धरम शिवसुख लहै, वृंदावन कबहूं न आवै भववनमें ॥ ११५ ॥

१ गणधरदेवने । २ करण ।

दोहा।

भेदभाव जेते कहे, तेते वचनविलास।
निरविकलप चिद्रूप है, गुन अनंतकी रास ॥ ११६ ॥
समल अमल दोनों दशा, तामें आतम आप।
चार भेदमय सुथिर है, देखो निजघट व्याप ॥ ११७ ॥
यों जब उर सरधा धरै, तजि परसों अनुराग।
परममोखसुख तब लहै, चिदानंदरस पाग ॥ ११८ ॥

मनहरण।

जैसे लाल फूलके उपाधसों फटिकमाहिं, लालरूप लसत विशाल ताकी छटा है। तैसे ही अनादि पुदगल कर्मबंधके संजोगसों उपज्यौ जीवमाहिं राग ठटा है॥ जबै उपाधीक रंग संगतैं नियारौ होत, तबै शुद्ध जोति जगै फटै मोहघटा हैं। एक परनत परमानू ज्यों न बँधै त्यों ही, रागादि विभाव विना बंधभाव कटा है॥ ११९ ॥

छप्पय।

जब यह आतम आप, भेदविज्ञान धार करि।
निज सरूपकों लखै, सकल भ्रमभाव टार करि॥
करता करम सुकर्म, कर्मफल चारभेदमय।
चिदविलास ही समल, अमल दोउ दशामाहिं हय॥
इमि जानि तब हि परवस्तुतैं, रागादिक ममता हरै।
निज शुद्ध चेतनाभावमें, सुथिर होय शिवतिय वरै १२०

कवित । (३१ मात्रा)

इहि प्रकार निरदोष बतायो, शिवपुरको मग सुखद सदीव ।
ताहि त्यागि जो आन जतनसों, चाहत होन मूढ शिवपीव ॥
सो मूरख परधान जगतमें, तास आश विपरीत अतीव ।
जीभ स्वादके कारन सो शठ, पानी मथिके चाहत घीव१२१॥

अधिकारान्तमंगल । मत्तगयन्द ।

श्रीजिनचंद सुखाम्बुधिवर्द्धन, भव्यकुमोदप्रमोदक नीको ।
जन्मजरामृततापविनाशन, शासन है जनके हितहीको ॥
शुद्धपयोग निरोग सु भेषज, पोषनको समरत्थ अधीको ।
सो इत मंगल भूरि भरो प्रभु, वंदत वृंद सदा तुमही को ॥

दोहा ।

बंदौं श्रीसरवज्ञपद, भ्रमतममंजनभान ।
विघनहरन मंगलकरन, देत विमल कल्यान ॥ १२३ ॥
श्रीमत्प्रवचनसारकी, भाषाटीकामाहिं ।
दरवनिको सामान्यतः, कथन समास कराहिं ॥ १२४ ॥

इतिश्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृतपरमागमश्रीप्रवचनसारजी ताकी वृंदावनकृतभाषाविषै दरवनिका सामान्यवर्णनका अधिकार चौथा पूरा भया ।

इहां ताईं सर्व गाथा १२७ एक सौ सत्ताईस भई और भाषाके छंद सर्व ४६२ चारिसौ बासठ भये सो जयवंत होउ । लिखी वृन्दावनने यही प्रथम प्रति है । मंगलमस्तु । श्रीरस्तु । मिती मार्गशीर्षकृष्णा १३ ॥ गुरुवार संवत् १९०५ ॥ काशीजीमें, निज परोपकारार्थ । भूल चूक विशेषीजन शोधि शुद्ध कीजो ॥

अथ पञ्चमोविशेषज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

मंगलाचरण–दोहा ।

वंदौं आतम जो त्रिविध, वर्जित कर्मविकार ।
नेत भेत ज्ञातृत्व जुत, सब विधि मंगलकार ॥ १ ॥
अब विशेषता दरवका, कथनरूप अधिकार ।
श्रीगुरु करत अरंभ सो, जैवंतो सुखकार ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

सत्तारूप दर्व दोय भांति है अनादि सिद्ध, जीव औ अजीव यही साधी श्रुति मंथ है । तामें जीव लच्छन विलच्छन है चेतनता, जासको प्रकाश अविनाशी पूज पंथ है ॥ ताहीको प्रवाह ज्ञान दर्शनोपयोग दोय, सामान्य विशेष वस्तु जानिवेतें कथ है । पुग्गलप्रमुख दर्व अजीव अचेतन हैं, ऐसे वृंद भाषी कुंदकुंद निरगंथ है ॥ ३ ॥

(२)

छप्पय ।

जो नभको परदेश जीव, पुदगल समेत है ।
धर्माधर्म सु अस्तिकाय,—को जो निकेत है ॥
कालानुजुत पंच दरव, परिपूरन जामें ।
सोई लोकाकाश जानु, संशय नहिं यामें ॥
सब कालमाहिं सो अचल है, अवगाहन गुनको धरैं ।
तसु परे अलोकाकाश जहँ, पंच रंच नहिं संचरैं ॥ ४ ॥

(३)

दोहा ।

पुद्गल अरु जीवातमक, जो यह लोकाकाश ।
ताके थिति उतपाद वय, परनति होत प्रकाश ॥ ५ ॥
भेद तथा संघाततें, ज्यों श्रुति करत बखान ।
ताको उर सरधा धरो, त्यागी कुमत-वितान ॥ ६ ॥

मनहरण ।

क्रियावंत भाववंत ऐसे दोय भेदनितैं, दर्वनिमें भेद दोय भाषी भगवंत है । मिलि विछुरन हलचलन क्रिया है औ, सुभाव परनति गहै सोई भाववंत है ॥ जीव पुद्गलमाहिं दोनों पद पाइयत, धर्माधर्म काल नभ भाव ही गहत है । धन्य धन्य केवलीके ज्ञानको प्रकाश वृंद, एकै बार सबै सदा जामें झलकंत है ॥ ७ ॥

(४)

मनहरण ।

जीवाजीव दर्व जिन चिह्ननितैं भलिभांति, चीह्ने जाने जाहिं सोई लच्छन बखाना है । सो है यह दर्वके सरूपकी विशेषताई, जुदो कछु वस्तु नाहिं ऐसे परमाना है । मूरतीक दरवको लच्छन हू मूरतीक, अमूरतिवंतनिको अमूरत माना है । लच्छके जनायवेतैं लच्छन कहावै वृंद, प्रदेशतैं एकमेक सिद्ध ठहराना है ॥ ८ ॥

लक्षण यथा—दोहा।

मिली परस्पर वस्तुको, जाकरि लखिये भिन्न।
लच्छन ताहीको कहत, न्यायमती परविन्न[1] ॥ ९ ॥
जो सुकीय नित दरवके, है अधार निरबाध।
सोई गुन कहलावई, वर्जित दोप उपाध ॥ १० ॥
तेई दरवनिके सुगुन, लच्छन नाम कहाहिं।
जातैं तिनकरि जानियै, लच्छ दरब सब ठाहिं ॥ ११ ॥
भेद विवच्छातैं कहे, गुनी सुगुनमें भेद।
वस्तु विचारत एक है, ज्ञानी लखत अखेद ॥ १२ ॥

(५)

छप्पय।

मूरतीक गुनगन इंद्रिनिके, गहन जोग है।
सो वह पुग्गल दरवमई, निहचै प्रयोग है ॥
वरन गंध रस फांस, आदि बहु भेद तासके।
अब सुनि भेद अमूरत, दरवनिके प्रकाशके ॥
जो दरब अमूरतवंत है, तासु अमूरत गुन लसत।
सो ज्ञान अतिंद्रीके विषैं, प्रतिबिंबित जुगपत वसत ॥ १३ ॥

(६)

मत्तगयन्द।

पुग्गलदर्वविषैं गुन चार, सदा निरधार विराजि रहे हैं।
वर्न तथा रस गंध सेपर्स[2], सुभाविक संग अभंग लहे हैं ॥

---

१ प्रवीण-चतुर। २ स्पर्श।

दैमेअनु अति सूच्छिमतें, पृथिवी परजंत समस्त गहे हैं।
और जु शब्द सो पुग्गलकी, परजाय विचित्त अनित कहे हैं॥

पट्प्रकार पुद्गलवर्णन—दोहा।

पटप्रकार पुदगल कहे, सुनो तासुके भेद।
जथा भनी सिद्धांतमें, संशयभाव विछेद॥ १५॥
सूच्छिम सूच्छिम प्रथम है, सूच्छिम दूजो भेद।
सूक्ष्मथूल तीजो कह्यौ, थूलसूक्ष्म है वेदं॥ १६॥
थूल पंचमों जानियै, थूलथूल पट एम।
अब इनको लच्छन सुनो, श्रुति मथि भाषत जेम॥१७॥

मनहरण।

प्रथम विभेद परमानू परमान मान, कारमानवर्गना दुतीय सरधान है। नैन नाहिं गहैं चार इंद्री जाहि गहैं सोई, तीजो भेद विषैके विवशतैं निदान है। चौथो भेद नैनतैं निहारियै जु छायादि सो, हस्तादिसों नाहिं गह्यो जात परमान है। पांचमो विभेद जल तेल मिलै छेदै भेदै, छठो भूमि भूधरादि संधि न मिलान है॥ १८॥

वर्णभेद—दोहा।

अरुन पीत कारो हरो, सेत वरन ये पंच।
इनके अंतरके विषैं, भेद अनंते संच॥ १९॥

रसभेद।

खाटा मीठा चिरपिरा, करुआ और कषाय।
पांच भेद रसके कहे, तासु भेद बहु भाय॥ २०॥

१ परमाणु। २ चौथा।

गंधभेद ।

गंध दोय परकार है, प्रथम सुगंध पुनीत ।
दुतिय भेद दुरगंध है, यों समुझो उर मीत ॥ २१ ॥

स्पर्शभेद ।

तपत शीत हरुवो गरू, नरम कठोर कहाय ।
रुच्छ चीकनो फरसके, आठ भेद दरसाय ॥ २२ ॥

प्रश्न—चौपाई ।

पुदगलके गुन वरने जिते । इंद्रीगम्य कहे तुम तिते ॥
तहां होत शंका मनमांहिं । सुनिये कहों वेदकी छांहिं ॥२३॥
परमानू अति सूच्छिम गना । कारमानकी पुनि वरगना ॥
तिनहूमें चारों गुन वसें । क्यों नहिं इंद्री ग्राहे तिसे ॥ २४ ॥

उत्तर—कवित्त (३१ मात्रा) ।

परमानू आदिक पुदगलको, इंद्रीगम्य कहे इस हेत ।
जब वह खंध बंधमें ऐहै, शक्त व्यक्त करि सुगुन समेत ।
तब सो इंद्रीगम्य होइगो, व्यक्तरूप यों लखो सचेत ।
इंद्रिनिके हैं विषय तासु गुन,तिसी अपेच्छा कथन कथेत २५

पुनः प्रश्न—दोहा ।

पुदगल मूरतिवंत जिमि, तिमि व्है शब्द प्रतीत ।
तौ पुदगलको गुन कहौ, परज कहौ मति मीत ॥ २६ ॥

उत्तर—

गुनको लच्छन नित्त है, परज अनित्त प्रतच्छ ।
गुन होते तित शबद नित, होवो करतो दच्छ ॥ २७ ॥

जो होतौ गुन तौ सुनो, अनू आदिके माहिं।
सदा शबद उपजत रहत, सो तौ लखियत नाहिं ॥ २८ ॥
खंधनिके व्याघाततैं, होत शबद परजाय।
प्रथम भेद भाषामई, दुतिय अभाषा गाय ॥ २९ ॥

मनहरण।

केई मतवाले कहैं शब्द गुन अकाशको, तासों स्यादवादी कहै यह तो असंभौ है। आकाश अमूरतीक इंद्रिनिके गम्य नाहिं, शब्द तो श्रवणसेती होत उपालंभौ है। कारन अमूरतको कारजहू तैसो होत, यह तो सिद्धांत थूंद ज्यों सुमेरु थंभौ है। सर्व ही अकाशतैं शबद सदा चाहियत, गुनी गुन तजै कैसे बड़ो ही अचंभौ है ॥ ३० ॥

दोहा।

तातैं शबद मतच्छ है, पुदगलको परजाय।
खंध जोगतैं ऊपजत, वरन अवरन सुभाय ॥ ३१ ॥

प्रश्न—

पुदगलकी परजाय तुम, शबद कही सो ठीक।
श्रवन हि ताकों गहत है, यही सनातन लीक ॥ ३२ ॥
और चार इंद्रीनिकरि, क्यों नहिं लखियै ताहि।
मूरतीक तौ सब गहैं; याको करो निबाह ॥ ३३ ॥

उत्तर—

पांचो इंद्रिनिके विषय, जुदे कहे श्रुतिमाहिं।
तहां न ऐसो नेम की, सब सब विषय गहाहिं ॥ ३४ ॥

नेम यही जानो प्रगट, निज निज विषयनि अच्छ ।
गहन करहिं नहिं अपरके, विषय गहहिं परतच्छ ॥ ३५ ॥
ताहीतैं यह श्रवनको, शबद विषय दिढ़ जान ।
श्रवन हि ताकों गहत है, और न गहत निदान ॥ ३६ ॥

प्रश्न–छप्पय ।

इहां प्रश्न कोउ करत, गंध गुन नीरमाहिं नहिं ।
ताहीतैं नाशिका नाहिं, संग्रहत तासुकहिं ॥
अगनि गंध रस रहित, घ्रान रसना नहिं गाहै ।
पौनमें न दरसात, गंध रस रूप कहां है ॥
ताहीतैं नाक-नयन-रसन, मारुतको नहिं गहि सकत ।
गुन होत गहहि निज निज विषय, यही अच्छकी रीति अत ॥

उत्तर–दोहा ।

पुदगल दरव धरै सदा, फरस रूप रस गंध ।
सब परजायनिकेविषैं, परमानू लगि खंध ॥ ३८ ॥
कहूं कोउ गुन मुख्य है, कहूं कोउ गुन गौन ।
चारमाहिं कमती नहीं, यह निहचै चितौन ॥ ३९ ॥
एक परजमें जे अनू, प्रनई हैं परधान ।
दुतिय रूप सो परिनवहिं, देखत दृष्टि प्रमान ॥ ४० ॥
वरनोतैं वरनांतर, रसतैं पुनि रस और ।
इत्यादिक प्रनवत रहत, जथाजोग सब ठौर ॥ ४१ ॥

छप्पय ।

चंद्रकांत पाषानकाय, पृथिवी पृथिवीतल ।
श्रवत तासतैं गंधगुनरहित सुशीतल ॥

लखो वारितैं होत काय, पुद्गली मुक्ताफल।
अरणि दारतैं अनल होत, जलतैं सु वायुवल ॥
इत्यादि अनेक प्रकारको, प्रवचन बहुत विधान है।
तातैं सब परजैकेविषै, चारों गुन परधान है ॥ ४२ ॥

दोहा।

तातैं पृथ्वी आदिके, पुदगलमें नहिं भेद।
प्रवचनमाहिं विभेद है, यों गुरु करी निवेद ॥ ४३ ॥
सवहीमें फरसादि गुन, चारों हैं निरधार।
वृंदावन सरधा धरो, सब संशय परिहार ॥ ४४ ॥

(७-८)

मनहरण।

एकै काल सरव दरवनिको थान दान, कारन विशेष गुन राजत अकासमें। धरम दरवको गमन हेत कारन है, जीव पुदगलके विचरन विलासमें ॥ अधरम दर्वको विशेष गुन थिति हेत, दोनों क्रियावंतनिके थित परकासमें। काल-को सुभाव गुन वरतनाहेत कह्यौ, आतमाको गुन उपयोग प्रतिभासमें ॥ ४५ ॥

दोहा।

ऐसे मूरतिरहितके, गुन संक्षेप भनंत।
वृंदावन तामें सदा, हैं गुन और अनंत ॥ ४६ ॥
जो गुन जासु सुभाव है, सो गुन ताहीमाहिं।
औरनिके गुन औरमें, कबहूं व्यापैं नाहिं ॥ ४७ ॥

नभको तो उपकार है, पांचोंपर सुन मीत।
धर्माधर्मनिको लसै, जिय पुदगलसों रीत ॥ ४८ ॥
काल सवनिपै करतु है, निज गुनतैं उपकार।
नव जीरन परिनमनको, यातैं होत विचार ॥ ४९ ॥
जीव लखै जुगपत सकल, केवलदृष्टि पसार।
याहीतैं सब वस्तुको, होत ज्ञान अविकार ॥ ५० ॥

(९)

जीवरु पुदगल काय, नभ, धरम अधरम तथेस।
हैं असंख परदेशजुत, कालरहित परदेस ॥ ५१ ॥

मनहरण।

एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, संकोच विथार जथा दीपकपै ढपना। पुग्गल प्रमान एक अप्रदेशी है तथापि, मिलन शकतिसों बढ़ावै वंश अपना॥ धर्माधर्म अखंड असंख परदेशी नभ, सर्वगत अनंत प्रदेशी वृंद जपना। कालानूमें मिलन शकतिको अभाव तातैं, अप्रदेशी ऐसे जानैं मिटै ताप तपना ॥ ५२ ॥

(१०)

लोक औ अलोकमें अकाश ही दरव और, धर्माधर्म जहां लगु पूरित सो लोक है। ताहीविषैं जीव पुदगलको प्रतीत करो, कालकी असंख जुदी अनूको थोक है॥ समयादि परजाय जीव पुदगलहीके, परिनामनिसों परगटत सुतोक है।

काजरकी रेनुकरि भरी कजरौटी जथा, तथा वृंद लोकमें विराजै दर्वथोक है ॥ ५३ ॥

दोहा ।

धर्माधर्म दरव दोऊ, गति थितिके सहकार ।
ये दोनों जहँ लगु सोई, लोकसीम निरधार ॥ ५४ ॥

(११)

दोहा ।

ज्यों नभके परदेश हैं, त्यों औरनिके मान ।
अपदेशी परमानु ते, होत प्रदेश प्रमान ॥ ५५ ॥

मनहरण ।

एक परमानूके बराबर अकाश छेत्र, ताहीको प्रदेश नाम ज्ञानी सिद्ध करी है । परमानु आप अपदेशी है सुभावही-तैं, सूछिम न यातैं और ऐसी दिढ़तरी है ॥ ताही परदेश-तैं अनंत परदेशी नभ, धर्माधर्म एक जीव असंख प्रसरी है। ऐसे परदेशको प्रमान जो विधान कह्यो, स्वामी कुंदकुंद वृंद वंदै मोह मरी है ॥ ५६ ॥

प्रश्न-दोहा ।

नभ पुनि धर्माधर्मके, कहे प्रदेश जितेक ।
सो तो हम सरधा करी, ये अखंड थिर टेक ॥ ५७ ॥
जीव अमूरत तन धरै, तासु असंख प्रदेस ।
सो कैसेकरि संभवै, लघु दीरघ जसु भेस ॥ ५८ ॥

उत्तर ।

संकोचन अरु विस्तरन, दोइ शकति जियमाहिं ।
जहँ जैसे तनको धरै, तहँ तैसो है जाहि ॥ ५९ ॥
ज्यों दीपक परदेशकरि, जो कछु धरत प्रमान ।
लघु दीरघ ढकना ढकैं, तजत न अपनो बान ॥ ६० ॥
बालक वयतैं तरुन जब, होत प्रगट यह देह ।
बढ़त प्रदेश समेत तन, यामें कह संदेह ॥ ६१ ॥
थूल अंग रुज संगतैं, जासु कृशित व्है जात ।
तहँ प्रदेश संकोचता, विदित विलोको भ्रात ॥ ६२ ॥

(१२)

मनहरण ।

कालानू दरव अप्रदेशी है असंख अनू, मिलन सुभावके सरवथा अभावतैं । सो प्रदेश मात्र पुग्गलानूके निमित्तसेती, समै पर्ज प्रगटिकै वर्तत वतावतैं । आकाशके एक परदेशतैं दुतीयपर, जबै पुग्गलानु चलै मंदगति दावतैं । ऐसे निश्चै विवहारकालको सरूप भेद, ज्ञानी जीव जानिकै प्रतीत चित लावते ॥ ६३ ॥

दोहा ।

लोकाकाश प्रदेश प्रति, कालानू परिपूर ।
हैं असंख निरबाध नित, मिलन शकतितैं दूर ॥ ६४ ॥
ताही एक प्रदेशतैं, जब पुदगल परमानु ।
चलै मंदगति दुतियपर, तब सो समय बखान ॥ ६५ ॥

याही समय प्रमानकरि, है ध्रुव वय उतपाद।
वरतमान सब दरवमें, विवहारिक मरजाद ॥ ६६ ॥

(१३)

मनहरण।

एक कालअनूर्तें दुतीय कालअनूपर, जात जबै पुग-लानु मंदगति करिकै। तामें जो विलंब होत सोई काल दरव-को, सगै नाम परजाय जानो मर्म हरिकै ॥ ताके पुव्व परे जो पदारथ है नित्तभूत, सोई काल दरव है ध्रौव धर्म धरि-कै ॥ समय परजाय उतपाद वयरूप कहे, ऐसे सरधान करो शंका परिहरिकै ॥ ६७ ॥

दोहा।

जो अखंड ब्रहमंडवत, काल दरवहू होत।
समय नाम परजाय तब, कबहुं न होत उदोत ॥ ६८ ॥
भिन्न भिन्न कालानु जब, अमिल सु....भी होय।
गनितरीतिगत कर्ममें, तब ही बनै बनोय ॥ ६९ ॥
इक कालनू छांड़िकै, जब दुतीयपर जात।
पुग्गलानु गति मंद करि, तब सो समय कहात ॥ ७० ॥
सो निरंश अति सूक्ष्म है, काल दरवकी पर्ज।
याहीतैं क्रम चढ़ि बढ़त, सागरांत लगु सर्ज ॥ ७१ ॥

प्रश्न-

पुग्गलानु गति शीघ्र करि, चौदहराजू जात।
समय एकमें हे सुगुरु, यह तो बात विख्यात ॥ ७२ ॥

तहां सपरसत कालके, अनु असंख मगमाहिं ।
याहूमें शंका नहीं, श्रेणीवद्ध रहाहिं ॥ ७३ ॥
पुव्वापरके भेदतैं, समयमाहिं तित भेद ।
असंख्यात क्यों नहि कहत, यामें कहा निषेद ॥ ७४ ॥

उत्तर—

जिमि प्रदेश आकाशको, परमानू परमान ।
अति सूच्छिम निरअंश है, मापन गज परधान ॥ ७५ ॥
ताहीमें नित वसत है, अनु अनंतको खंध ।
अंश अनंत न होत तसु, लहि तिनको सनबंध ॥ ७६ ॥
यह अवगाहन शकतिकी, है विशेषता रीत ।
तिमि तित गति परिनामकी, है विचित्रता मीत ॥ ७७ ॥
समय निरंश सरूप है, वीजभूत मरजाद ।
सरव दरव परवरतई, ध्रुव वय पुनि उतपाद ॥ ७८ ॥

(१४)

मनहरण ।

एक पुग्गलानु अविभागी जिते आकाशमें, बैठे सोई अकाशको प्रदेश वखान है। ताही परदेशमाहिं और पंच द्रव्यनिके, प्रदेशको थान दान देइवेको वान है ॥ तथा पर्म सूच्छिम प्रमानके अनंत खंध, तेऊ ताही थानमें विराजैं थिति ठान है । निरावाध सर्व निज निज गुन पर्ज लिये, ऐसी अवगाहनकी शकति प्रधान है ॥ ७९ ॥

प्रश्न-छन्द नराच ।

अकाश दर्व तो अखंड एकरूप राजई ।
सु तासुमें प्रदेश अंशभेद क्यों विराजई ॥
अखंड वस्तुमाहिं अंशकल्पना बनै नहीं ।
करै सुशिष्य प्रश्न ताहि श्रीगुरू कहैं यही ॥ ८० ॥

उत्तर-दोहा ।

निरविभाग इक वस्तुमें, अंश कल्पना होय ।
नय विवहार अधारतैं, लगै न बाधा कोय ॥ ८१ ॥
निजकरकी दो आंगुरी, नभमें देखि उठाय ।
क्षेत्र दोउको एक है, कै दो जुदे बताव ॥ ८२ ॥
जो कहि है की एक है, तो कहु कौन अपेच्छ ।
एक अखंड अकाशकी, कै अंशनिके सेच्छ ॥ ८३ ॥
जो कहि है नभपच्छ गहि, तब तौ सांची बात ।
जो अंशनिकरि एक कहि, तब विरोध दरसात ॥ ८४ ॥
इक अंगुरीके छेत्रसों, दूजेसों नहिं मेल ।
अंश अपेच्छा इक कहै, यह लैरिकनिको खेल ॥ ८५ ॥
जुदे जुदे जो अंश कहि, नभ अखंडता त्याग ।
तौ प्रति अंश असंख नभ, चहियत तितौ विभाग ॥ ८६
तातैं नय विवहारतैं, अंश कथा उर आन ।
कारज विदित विलोकिकै, जिन आगम परमान ॥ ८७ ॥

१ बालकोंका ।

(१५)

मनहरण।

काल विना बाकी पंच दर्वनिके परदेश, ऐसे जैनबैनसों प्रतीति कीजियतु है। एक तथा दोय वा अनेक विधि संख्या लियैं, अथवा असंख तक चित दीजियतु है॥ ताके आगे अनंत प्रदेश लगु भेद वृंद, जथाजोग सबमें विचार लीजियतु है। काल दर्व एक ही प्रदेशमात्र राजतु है, ऐसो सरधान सुद्ध सुधा पीजियतु है॥ ८८॥

अकाशके अनंत प्रदेश हैं अचल तैसे, धर्माधर्म दोऊके असंख थिर थपा है। एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, सो तो घटैं बढ़ैं जथा देह ढाँपैं ढपा है॥ एक पुग्गलानु है प्रदेश मात्र दर्व तऊ, मिलन सुभावसों बढ़ावे वंश अपा[1] है। संख्यासंख्य अनंत विभेद लगु ऐसें पंच, दर्वके प्रदेशको अनादि नाप नपा है॥ ८९॥

दोहा।

जिनके बहुत प्रदेश हैं, तिर्यकप्रचई[2] सोय।
सो पांचों ही दरवमें, व्यापत हैं भ्रम खोय॥ ९०॥
कालानूमें मिलनकी, शकति नाहिं तिस हेत।
तिर्यक परचैके विषैं, गनती नाहिं करेत॥ ९१॥
समयनिके समुदायको, ऊरधैंपरचै[3] नाम।
सो यह सब दरवनिविषैं, व्यापत है अभिराम॥ ९२॥

---

१ अपना। २ प्रचय–समूह। ३ ऊर्ध्वप्रचय।

काल दरवके निमिततैं, ऊरधपरचै होत ।
ताहीतैं सब दरवको, परनत होत उदोत ॥ ९३ ॥
पंचनिके ऊरधप्रचय, काल दरवतैं जानु ।
कालमाहिं ऊरधप्रचय, निजाधार परमानु ॥ ९४ ॥
तीरेक-परचै[1] पांचमें, निजप्रदेश सरवंग ।
निजाधीन धारै सदा, जथाजोग[2] बहुरंग ॥ ९५ ॥

(१६)

माधवी।

जिस काल समैकहँ एक समै,—
महँ वे उतपाद विराजि रहा है ।
तब हू वह आपु सुभावविषैं,
समवस्थित है ध्रुवरूप गहा है ॥
परजाय समै उपजै विनशै,
अनु पुग्गलकी गति रीति जहा है ।
यह लच्छन काल पदारथको,
सुविलच्छन श्रीगुरुदेव कहा है ॥ ९६ ॥

दोहा।

कालदरवको क्यों कहो, उपजनविनशनरूप ।
समय परजहीकों कहो, वयउतपादसरूप ॥ ९७ ॥
ध्रौव दरवको छांड़िके, एकै समयमँझार ।
उतपत ध्रुव वय सधत नहिं, कीजै कोट विचार ॥९८॥

---

१ तिर्यक् प्रचय । २ यथा ।

उतपत अरु वयके विषैं, राजत विदित विरोध ।
अंधकार परकाशवत, देखो निज घट शोध ॥ ९९ ॥
तातैं कालानू दरव, ध्रौव गहोगे जव्व ॥
निरावाघ एकै समय, तीनों सधि हैं तव्व ॥ १०० ॥

छप्पय ।

जब पुग्गल परमानु, पुव्वकालानु त्याग करि ।
अगिलीपर वह गमन करत, गति मंद तासु धरि ॥
समय कहावत सोय, तहां आधार दरव गहु ।
तब तीनों निरवाध सधैं, इक समयमाहिं वहु ॥
लखि निजकर अंगुरी वक्र करि, एक समय तीनों दिखैं ।
उतपाद वक्र वय सरलता, ध्रुव अँगुरी दोनों विखैं॥१०१॥

(१७)

मनहरण ।

एकही समैमें उतपाद ध्रुव वय नाम, ऐसे तीनों अ-र्थनिको काल दर्व धारै है । निश्चैकरि यही सदभावरूप सत्ता लिये, निजाधीन निराबाध वर्तत उचारै है ॥ जैसे एक समैमें त्रिभेदरूप राजत है, तैसे सर्वकाल सर्व कालानू पसारै है । समै परजाय उतपाद वयरूप राजै, दर्वकी अपेच्छा ध्रुव धरम उदारै है ॥ १०२ ॥

(१८)

वस्तुको सरूप असतित्वको निवासभूत, सत्ता रसकूप-को अधार परदेस है । ऐसो परदेस जाके येकौ नाहिं पाइये

तौ, विना परदेस कहो कैसो ताको भेस है ॥ सो तो परतच्छ ही अवस्तु शून्यरूप भयौ, कैसेकरि जाने ताके सामान्य विशेस है । अस्तिरूप वस्तुहीके होत उतपाद वय, गुन परजायमाहिं ऐसो उपदेस है ॥ १०३ ॥

दोहा ।

जो प्रदेशतैं रहित है, सो तो भयो अवस्त ।
ताके ध्रुव उतपाद वय, लोपित होत समस्त ॥ १०४ ॥
तातैं काल दरव गहो, अनुप्रदेश परमान ।
तब तामें तीनों सधैं, निराबाध परधान ॥ १०५ ॥

मनहरण ।

केई कहैं समय परजायहीको दर्व कहो, प्रदेशममान कालअनू कहा करसै । समै ही अनादितैं निरंतर अनेक अंश, परजायसेती उतपाद–पद परसै ॥ तामें पुव्वको विनाश उत्तरको उतपाद, पर्जेपरंपरा सोई ध्रौव धारा वरसै । ऐसे तीनों भेद भले सधे परजायहीमें, तासों स्यादवादी कहै यामें दोष दरसै ॥ १०६ ॥

गीता ।

जिस समयका है नाश तिसका, तो सरवथा नाश है ।
जिस समयका उतपाद सो, भी स्वतह[1] विनशत जात है ।
ध्रुव कौन इनमें है जिसे, आधार धरि होवैं यही ।
यों कहत छिनछायी दरवमें, दोष लागैगो सही ॥ १०७ ॥

---

१ स्वतः–स्वयम् ।

दोहा।

तातैं कालानू दरव, ध्रौव गहोगे जब्ब।
निराबाध एकै समय, तीनौं सधि हैं तब्ब ॥ १०८ ॥

मदावलिप्तकपोल।

काल दरवमें जो प्रदेशको थापन कीना।
तो असंख कालानु, भिन्न मति कहो प्रवीना ॥
कहो अखंडप्रदेश, लोकपरमान तासुकहँ।
ताहीतैं उतपन्न समय, परजाय कहो तहँ ॥ १०९ ॥

मनहरण।

कालको अखंड मानें समय नाहिं सिद्ध होत, समय परजाय तो तब ही उपजत है। जबै कालअनू भिन्न भिन्न होंहि सुभावतैं, तहां पुग्गलानू जब चलै मंदगत है ॥ एकको उलंघि जब दूजे कालअनूपर, तामें जो विलंब लगै सोई समै जत है। अखंडप्रदेशी मानें कैसे गतिरीति गनै, कैसे फेर कालको प्रमान कहु सत है ॥ ११० ॥

दोहा।

तातैं कालानू दरव, भिन्न गहोगे जब्ब।
निराबाध एकै समय, तीनौं सधि हैं तब्ब ॥ १११ ॥
काल अखंडित मानतैं, समयभेद मिटि जाय।
तथा सरव परदेशतैं, जगै समय परजाय ॥ ११२ ॥
तथा कालके है नहीं, तिर्यक—परचै रूप।
एक यह दूपन लगै, यों भाषी जिनभूप ॥ ११३ ॥

काल असंख अनून्हको, सुनो वरतना भेद।
प्रथमहिं एक प्रदेशतैं, वरततु है निरखेद ॥ ११४ ॥
पुनि तसु आगेकी अनू, तिनसों वर्तत सोय।
पुनि तसु आगे और सो, वर्तत है अनु जोय ॥ ११५ ॥
असंख्यात अनु-रूपकरि, ऐसे वरतत नित्त।
काल दरवकी वरतना, यों जिन भाषी मित्त ॥ ११६ ॥
याके ऊरध ऊरधै, होहिं समय परजाय।
सब दरवनिपर करत है, वर्त्तनमाहिं सहाय ॥ ११७ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)

तातैं तत्त्वारथके मरमी, तिनको प्रथमहिं यह उपदेश ॥
कालदरव परदेशमात्र है, औवप्रमान रूप तसु भेश ॥
नित्तभूत निरबाध असंखा, अनु अनमिलन सुभाव हमेश।
ताहीकी परजाय समय है, यों भाषी सरवज्ञ जिनेश ॥११८॥

दोहा।

मंगलमूल जिनिंदको, वंदौं वारंवार।
जसु प्रसाद पूरन भयो, बड़ो ज्ञेयअधिकार ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजी ताकी वृन्दावनकृतभाषाविषै विशेषज्ञेयाधिकार नामा पाचमा अधिकार पूरा भया।

इहां ताँई सर्वगाथा १४६ और भाषाके छंद सर्व ५८१ पाचसौ इक्यासी भये० सो समस्त जयवंत होहु। मिती मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी ६ शुक्रवारे संवत् १९०५। काशीजीमें वृंदावनने लिखी मूल प्रति। सो जयवंत होहु।

ओं नमः सिद्धेभ्यः

अथ षष्ठ ज्ञेयतत्त्वान्तर्गत–व्यावहारिक-जीवद्रव्याधिकारः ।

मंगलाचरण ।

दोहा ।

श्रीमत तीरथनाथ नमि, सुमरि सारदा संत[1] ।
जीवदरवको लिखत हों, विवहारिक विरतंत ॥ १ ॥

(१)

मनहरण ।

सहित प्रदेश सर्व दर्व जामें पूरि रहे, ऐसो जो अकाश सो तो अनादि अनंत है । नित्त[2] नूतन निराबाध अकृत अमिट अनच्छिन्न सुभाव सिद्ध सर्वगतिवंत है ॥ तिस षटदर्वजुत लोकको जो जानत है, सोई जीवदर्व जानो चेतनामहंत है । वही चार प्रानजुत जगतमें राजै वृंद, अनादि संबंध पुदगलको धरंत है ॥ २ ॥

दोहा ।

पंच दरव सब ज्ञेय हैं, ज्ञाता आतमराम ।
सो अनादि चहु प्रान जुत, जगमें कियो मुकाम[3] ॥ ३ ॥

(२)

इन्द्रीबल तिमि आयु पुनि, सासउसासरु प्रान ।
जीवनिके संसारमें, होहिं सदीव प्रमान ॥ ४ ॥

१ साधु–मुनि । २ नित्य–अविनाशी । ३ स्थिति ।

छप्पय।

फास जीभ नासिका, नैन श्रुति पंच अच्छ गहु।
काय वचन मन सु बल, तीन परतीति मान यहु॥
आयु चार गति थिति, तथैव सासोउसास गनि।
ये दशहूं विवहार-प्रान, जग जीवनिके भनि॥
निहचैकरि सुख सत्ता तथा, अवबोधन चैतन्नता।
यह चार प्रान धारैं सदा, सहज सुभाव अभिन्नता॥ ५॥

(३)

मत्तगयन्द।

जो जगमें निहचै करिके, धरि चार प्रकारके प्रान प्रमानो।
जीवतु है पुनि जीवत थो, अरु आगे हु पै यही जीवै निदानो॥
सो वह जीव पदारथ है, चिनमूरति आनंदकंद सयानो।
औ चहुं प्रान कहे वह तो, उपजे सब पुग्गलतैं परमानो॥६॥

(४)

मनहरण।

अनादितैं पुग्गल प्रसंगसों चिदंगजूके, चढ़्यो है कुढंग मोह रंग सरवंग है। ताही कर्मबंधसों निबद्ध चार माननिसों, कर्मनिको उदैफल भोगै बहुरंग है॥ तहां और नूतन करमको प्रबंध बंधै, जातैं [illegible] तरंग है॥ ऐसे पुग्गलीक कर्म उ[illegible] कर्मबंध उदैको प्रसंग है॥ ७॥

१ स्पर्श। २ क[illegible]

दोहा।

कारनके सादृश जगत, कारज होत समान।
तातैं पुदगल करमकरि, पुदगल बँधत निदान ॥ ८ ॥

(५)

द्रुमिला।

जगजीव निरंतर मोहरु दोष, कुभाव विकारनिको करिकै।
परजीवनिके चहु प्राननिको, विनिपात[1] करैं अदया[2] धरिकै ॥
तवही निहचै दृढ़ कर्मनिसों, मतिवंधित होहिं सुधा मरिकै।
जसु भेद हैं ज्ञानै-अवर्नको[3] आदिक, यों लखिये भ्रमको हरिकै॥९॥

दोहा।

मोहादिककरि आपनो, करत अमलगुन घात।
ता पीछे परमानको, करत मूढ़ विनिपात ॥ १० ॥
परमाननिको घात तौ, होहु तथा मति होहु।
पै निज ज्ञान–प्रान तिन, निहचै घाते सोहु ॥ ११ ॥
तब ज्ञानावरनादि तहँ, बँधैं करम दिढ़ आय।
प्रकृति प्रदेशनुभाग थिति; जथाजोग समुदाय ॥ १२ ॥

(६)

मत्तगयन्द।

कर्म महामलसों जगमें, जगजीव मलीन रहै तब ताईं।
चार प्रकारके प्राननिको, वह धारत बार हि बार तहांईं ॥

---

१ घात–नाश। २ निर्दयता–कठोरता। ३ ज्ञानावरणादि।

जावत देह प्रधानविषैं, ममता-मतिको नहिं त्याग कराई।
या विधि बंधविधान कथा, गुरुदेव जथारथ वृंद बताई ॥१३॥

दोहा।

जावत[1] ममता भाव है, देहादिककेमाहिं।
तावत[2] चार सुभान धरि, जगतमाहिं भरमाहिं ॥ १४ ॥
तातें ममताभावको, करो सरवथा त्याग।
निज समतारसरंगमें, वृंदावन अनुराग ॥ १५ ॥

(७)

मतगयन्द।

जो भवि इंद्रियआदि विजैकरि, ध्यावत शुद्धपयोग अभंगा।
कर्मनिसों तजि राग रहै, निरलेप जथा जल कंज[3] प्रसंगा ॥
झांक-विहीन[4] जथा फटिकप्रभ, त्यों उर जोतकी वृंद तरंगा।
क्यों मल प्रान बंधै वह तो, नित न्हात विशुद्ध-सुभाविक-गंगा॥

माधवी।

अपने असतित्व सुभावविषैं, नित निश्चलरूप पदारथ जो है।
चिनमूरत आप अमूरत जीव, असंख प्रदेश धरे वह तो है॥
तिसके पर पुग्गलके परसंगतैं, सो परजाय अनेकनि हो है।
जसु संहननौर[5] अकार अनेक, प्रकार विभेद सुवेद भनो है॥१७

---

१ जावत्—जब तक। २ तावत्—तब तक। ३ कमल।
४ छायारहित। ५ संहनन+और।

(८)

मनहरण।

संसार अवस्थामाहिं जीवनिके निश्चैकरि, पुग्गलविपाकी नामकर्म उदै आयेतैं। नर नारकौर[1] तिरजंच देवगति विषैं, जथाजोग देह वनै परजाय पायेतैं॥ संसथान संहनन आदि वहु भेद जाके, पुग्गलदरवकरि रचित वतायेतैं। जैसें एक आगि है अनेक रूप ईंधनतैं, नानाकार तैसे तहां चेतन सुमायेतैं॥ १८॥

(९)

मत्तगयन्द।

जे भवि भेदविज्ञान धरैं, सव दर्वनिको जुत भेद सुजानै।
जे अपनो सदभाव धरैं, निज भावविषैं थिर हैं परधानै॥
द्रव्य गुनौ परजायमई, तिनको ध्रुव वै[2] उतपाद पिछानै॥
सो परदर्वविषैं कवहूं नहिं, मोहित होत सुवुद्धिनिधानै॥१९॥

मनहरण।

जानै काललब्ध पाय दर्श मोहको खिपाय, उपशमवाय वा सुश्रद्धा यों लहाही है। मेरो चिदानंदको दरव गुन परजाय, उतपाद वय ध्रुव सदा मेरे पाहीं है॥ और परदर्व सर्व निज निज सत्ताहीमें, कोऊ दर्व काहूको सुभाव न गहाही है। तातैं जो प्रगट यह देह खेहँ-खान[3] दीसै, सो तो मेरो रूप कहूं नाहीं नाहीं नाहीं है॥ २०॥

---

१ नारक+और। २ व्यय-नाश। ३ मलकी खानि।

(१०)

द्रुमिला ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, उपयोग दुधा¹ छबि छाजत है।
नित जानन देखन भेद लिये, सो शुभाशुभ होय विराजत है॥
तिनही करि कर्मप्रबंध बँधे, इमि श्रीजिनकी धुनि गाजत है।
जब आपमें आपुहि बाजत है, तब स्यौपुर² नौबत बाजत है२१

(११)

मनहरण ।

जब इस आतमाके पूजा दान शील तप, संजम क्रियादि-रूप शुभ उपयोग है। तब शुभ आयु नाम गोत पुन्यवर्गनाको, कर्मपिंड बँधे यह सहज नियोग है॥ अथवा मिथ्यातविषै अमत कषायरूप, अशुभोपयोग मये पापको सँजोग है। दोऊके अभावतें विशुद्ध उपयोग वृंद, तहां बंध खंडके अखंड सुख भोग है॥ २२॥

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेवको जानत, प्रीतिसों वृंद तहां लव लावै।
सिद्धनिको निज ज्ञानतें देखिकै, ध्यापक होयके ध्यानमें ध्यावै॥
औ अनगार³ गुरूनिमें भक्ति, दया सब जीवनिमाहिं दिढ़ावै।
ताकहँ श्रीगुरुदेव वखानत, सो शुभरूपपयोग⁴ कहावै॥ २३॥

---

१ द्विधा-दो प्रकार। २ सिवपुर-मोक्ष। ३ दिगम्बर। ४ शुभोपयोग।

(१२)

मनहरण ।

इंद्रिनिके विषै और क्रोधादि कषायनिमें, जाको परिनाम अवगाढ़ागाढ़ रुखिया । मिथ्याशास्त्र सुनै सदा चित्तमें कुभाव गुनै, दुष्ट संग रंगको उमंग रस चुखिया । जीवनिके घातवेको जतन करत नित, कुमारग चलिवेमें उग्रमुख मुखिया । ऐसो उपयोग सोई अशुभ कहावत है, जाके उर-बसै वह कैसे होय सुखिया ॥ २४ ॥

(१३)

मत्तगयंद ।

मैं निज ज्ञानसरूप चिदातम, ताहि सुध्यावत हौं भ्रम टारी ।
भाव शुभाशुभ बंधके कारन, तातैं तिन्हैं तजि दीनों विचारी ॥
होय मधस्थ विराजत हौं, परदर्वविषैं ममता परिहारी ।
सो सुख क्यों मुखसों बरनौं,जो चखै सो लखै यह बात हमारी २५

दोहा ।

तातैं यह उपदेश अब, सुनो भविक बुधिवान ।
उद्दिम[1] करि जिन वचन सुनि, ल्यो निजरूप पिछान ॥ २६ ॥
ताहीको अनुभव करो, तजि प्रमाद उनमाद ।
देखो तो तिहि अनुभवत, कैसो उपजत स्वाद ॥ २७ ॥
जाके स्वादत ही तुम्हें, मिलै अतुल सुख पर्म ।
पुनि शिवपुरमें जाहुगे, परिहरि अरि वसु कर्म ॥ २८ ॥

1 उद्यम ।

यही शुद्ध उपयोग है, जीवन-मोच्छसरूप।
यही मोखमग धर्म यहि, यही शुद्धचिद्रूप ॥ २९ ॥

(१४)

मनहरण।

मै जो हों शुद्ध चिनमूरत दरव सो, त्रिकालमें त्रिजोगरूप भयो नाहिं कबही। तन मन बैनै ये प्रगट पुदगल यातें, मैं तो याको कारन हू बन्यौ नाहिं तब ही ॥ तथा करतार औ करावनहूहार नाहिं, करताको अनुमोदक हू नाहिं जब ही। ये अनादि पुग्गलकरमहीतें होते आये, ऐसी वृंद जानी जिनवानी सुनी अब ही ॥ ३० ॥

(१५)

दोहा।

तन मन वचन त्रिजोग है, पुद्गलदरवसरूप।
ऐसें दयानिधान वर, दरसाई जिनभूप ॥ ३१ ॥
सो वह पुदगल दरवके, अविभागी परमानु।
तासु खंधको पिंड है, यों निहचै उर आनु ॥ ३२ ॥

(१६)

मनहरण।

मैं जो हों विशुद्ध चेतनत्वगुनधारी सो तो, पुग्गल दरवरूप कभी नाहिं भासतो। तथा देह पुग्गलको पिंड है सुखंधै बंध, सोऊ मैंने कीनों नाहिं निहचै प्रकासतो ॥ ये तो है

१ वचन। २ स्कंध-परमाणुओंका समूह।

अचेतन औ मूरतीक जड़ दर्व, मेरो चिच्चमतकार जोत है चकासतो । तातैं मैं शरीर नाहिं करता हू ताको नाहिं, मैं तो चिदानंद वृंद अमूरत सासतो ॥ ३३ ॥

(१७)

अपदेशी अनू परदेशपरमान दर्व, सो तो सयमेव शब्द-परजैरहत है । तामैं चिकनाई वा रुखाई परिनाम बसै, सोई बंध जोग भाव तासमैं कहत है ॥ ताहीसेती दोय आदि अनेक प्रदेशनिकी, दशाको बढ़ावत सुपावत महत है । ऐसे पुदगलको सुपिंडरूप खंध बँधै, यासों चिदानंदकंद जुदोई लहत है ॥ ३४ ॥

दोहा ।

अविभागी परमानु वह, शुद्ध दरव है सोय ।
वरनादिक गुन पंच तो, सदा धरैं ही होय ॥ ३५ ॥
एक वरन इक गंध इक, रस दो फाँसमँझार ।
अंतर भेदनिमें धरे, श्रुति लखि लेहु विचार ॥ ३६ ॥

(१८)

मनहरण ।

पुग्गलैअनूमें चिकनाई वा रुखाई भाव, एक अंशतैं लगाय भाषे भेदरास है । एकै एक बढ़त अनंत लौं विभेद बढ़ै, जातैं परिनामकी शकति ताके पास है ॥ जैसे छेरी गाय

१ पर्याय-रहित । २ स्पर्शमें । ३ पुद्गलाणुमें ।

भैंस ऊंटनीके दूध घृत, तामें चिकनाई वृद्धि क्रमतें प्रकास है। धूलि राख रेतकी रुखाईमें विभेद जैसे, तैसे दोनों भावमें अनंत भेद भास है ॥ ३७ ॥

(१९)

मनहरण ।

पुग्गलकी अनू चीकनाई वा रुखाईरूप, आपने सुभाव परिनाम होय पैरनी। अंशनिकी संख्या तामें सम वा विषम होय, दोय अंश वाढहीसों बंधजोग वरनी ॥ एक अंश घटे बढे बँधत कदापि नाहिं, ऐसो नेम निहचै प्रतीति उर धरनी। चीकन रुखाई अनुबंध हू बँधत ऐसे, आगमप्रमानतें प्रमान वृंद करनी ॥ ३८ ॥

दोहा ।

दोय चार षट आठ दश, इत्यादिक सम जान ।
तीन पांच पुनि सात नव, यह क्रम विषम बखान ॥३९॥
चीकनताईकी अनू, सम अंशनि परमान ।
दोय अधिक होतें बंधै, यह प्रतीत उर आन ॥ ४० ॥
रुच्छ भावकी जे अनू, ते विषमंश प्रधान ।
दोय अधिकतें बँधत हैं, ऐसें लखो सयान ॥ ४१ ॥
अथवा चीकन रूक्षको, बंध परस्पर होय ।
दोय अंशकी अधिकता, जोग मिलै जब सोय ॥ ४२ ॥

१ प्रगट । २ परिणमन किया, परिनमी । ३ रूक्ष ।

एक अनू इक अंशजुत, दुतिय तीनजुत होय ।
जदपि जोग है बंधके, तदपि बंधै नहिं सोय ॥ ४३ ॥
एक अंश अति जघन है, सो नहिं बंधै कदाप ।
नेमरूप यह कथन है, श्रीजिन भाषी आप ॥ ४४ ॥

(२०)

मनहरण ।

चीकन सुभाव दोय अंश परनई अनू, ताको बंध चार अंशवालीहीसों होत है । और जो रुखाई तीन अंश अनू धारे होय, पंच अंशवालीसेती वाको बंध वोत(?)है॥ ऐसे ही अनंत लगु भेद सम विषमके, दोय अंश अधिकतैं बंधको उदोत है। रुच्छचीकनीहू बँधै खंधहूसों खंध बँधै, याही रीतिसेती लखै ज्ञानी ज्ञान जोत है ॥ ४५ ॥

दोहा ।

चीकनकी सम अंशतैं, विषम अंशतैं रुच्छ ।
दोय अधिक होतैं बँधैं, पुग्गलानुके गुच्छ ॥ ४६ ॥
चीकनता गुनकी अनू, पांच अंशजुत जौन ।
सात अंश चीकन मिलै, बंध होतु है तौन ॥ ४७ ॥
चार अंशजुत रुच्छसों, षट जुतसों बँध जात ।
याही भांति अनंत लगु, जानों भेद विख्यात ॥४८॥
दोय अनू अंशनि गिनैं, होहिं बराबर जेह ।
ताको बंध बँधै नहीं, यों जिनवैन भनेह ॥ ४९ ॥

(२१)

छप्पय।

दो प्रदेश आदिक अनंत, परमानु खंध लग।
सूच्छिम बादररूप, जिते आकार धरे जग॥
तथा अवनि जल अनल, अनिल परजाय विविधगन।
ते सब निग्ध रु रुच्छ, सुभावहितैं उपजे मन॥
यह पुदगलदरवरचित सरब, पुग्गल करता जानिये।
चिनमूरति यातें भिन्न है, ताहि तुरित पहिचानिये॥ ५०॥

(२२)

मनहरण।

लोकाकाशके असंख प्रदेश प्रदेश प्रति, कारमानवर्गना भरी है पुदगलकी। सूच्छिम औेर बादर अनंतानंत सर्वठौर, अति अवगाढ़ागाढ़ संधिमाहिं झलकी॥ आठ कर्मरूप परिनमन सुभाव लियें, आतमाके गहन करन जोग वलकी। तेईस विकार उपयोगको सँजोग पाय, कर्मपिंड होय बँधै रहै संग लकी॥ ५१॥

दोहा।

तातैं पुदगल करमको, आतम करता नाहिं।
भूल भावतें जीवकै, करम धूलि लपटाहिं॥ ५२॥

(२३)

मनहरण।

कर्मरूप होनकी सुभावशक्ति जामैं बसै, ऐसे जे जगत-

१ स्निग्ध-चिकना।

माँहि पुग्गलके खंध हैं। तेई जब जगतनिवासी जग जीवनिके, परिनाम अशुद्धको पावें सनबंध हैं॥ तबै ताई काल कर्मरूप परिनवैं सोई, ऐसो वृंद अनादितैं चलो आवै धंध है। ते वै कर्मपिंड आतमाने प्रनवाये नाहि, पुग्गलके खंधहीसों पुग्गलको बंध है॥ ५३॥

(३४)

जे जे दर्वकर्म परिनये रहे पुग्गलके, कारमानवर्गना सुशक्ति गुप्त धरिके। तेई फेर जीवके शरीराकार होहि सब, देहांतर जोग पाये शक्त व्यक्त करिके॥ जैसे वटबीजमें सुभाव शक्ति वृच्छकी सो, वटाकार होत वही शक्तिको उछरिके। ऐसे दर्वकर्म बीजरूप लखो वृंदावन, ताहीको सुफल देह जानों भर्म हरिके॥ ५४॥

(३५)

औदारिक देह जो विराजै नरतीरंकके[1], नानाभांति तासके अकारकी है रचना। तथा वैयेक्रीयक[2] शरीर देवनारकीके, जथाजोग ताहूके अकारकी है खचना॥ तैजस शरीर जो शुभाशुभ विभेद औ, अहारक तथैव कारमानकी विरचना। ये तो सर्व पुग्गल दरवके बने हैं पिंड, यातैं चिदानंद भिन्न ताहीसों परचना॥ ५५॥

---

१ नर–तिर्यचके। २ वैक्रियक।

(२६)

अहो भव्यजीव तुम आतमाको ऐसो जानो, जाके रस रूप गंध फास नाहिं पाइये । शब्द परजायसों रहित नित राजत है, अलिंगग्रहन निराकार दरसाइये ॥ चेतना सुभावहीमें राजै तिहुंकाल सदा, आनंदको कंद जगवंद वृंद ध्याइये । भेदज्ञान नैनतैं निहारिये जतनहीसों, ताके अनुभव रसहीमें झर लाइये ॥ ५६ ॥

दोहा ।

शब्द अलिंगग्गहन गुरु, लिख्यौ जु गाथामाहिं ।
कछुक अरथ तसु लिखत हौं, जुगतागमकी छाँहिं ॥५७॥

चौपाई ।

चिह्न सुपुद्गलके हैं जिते । फरस रूप रस गंध जु तिते ।
तिन करि तासु लखिय नहिं चिह्न । याहूतैं सु अलिंगग्गहन॥५८
अथवा तीन लिंग जगमाहिं । नारि नपुंसक नर ठहराहिं ।
ताहूकरि न लखिय तसु चिह्न । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥५९॥
अथवा लिंग जु इंद्रिय पंच । ताहूकरि न लखिय तिहि रंच ।
अतिइंद्रियकरि जानन सह्न । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६०॥
अथवा इंद्रियजनित जु ज्ञान । ताकरि है न प्रतच्छ प्रमान ।
की है आतमको यह चिह्न । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६१॥
अथवा लिंग नाम यह जुप्त । लच्छन प्रगट लच्छ जसु गुप्त ।
धूम अग्नि जिमि तिमि नहिं चिह्न। याहूतैं सु अलिंगग्गहन॥६२॥

अथवा आनमती बहु बकैं। दोषसहित लच्छन अन तकैं।
ताहूकरि न लखिय तसु चिहन। याहूतैं सु अलिंगगहन ॥६३॥
इत्यादिक बहु अरथविधान। शब्द अलिंगगहनको जान।
सो विशालटीकातैं देखि। पंडित मनमें दियौ विशेखि ॥६४॥
यह चेतन चिद्रूप अनूप। शुद्ध सुभाव सुधारसकूप।
स्वसंवेदनहिकरि सो गम्य। लखहिं अनुभवी समरसरम्य ॥६५॥
शब्दब्रह्मको पाय सहाय। करि उद्दिम मन वचनन काय।
काल लब्धिको लहि संजोग। पावैं निकटभव्य ही लोग॥६६॥
तातैं गुन अनंतको धाम। वचनअगोचर आतमराम॥
वृंदावन उर नयन उघारि। देखो ज्ञानजोति अविकारि ॥६७॥

(२७)

मनहरण।

मूरतीक रूप आदि गुनको धरैया यह, पुग्गल दरवसौं फरस आदिवानसौं। आपुसमें बंधे नाना भांति परमानू खंध, सो तो हम जानी सरधानी परमानसौं॥ तासौं विपरीत जो अमूरत चिदातमा सो, कैसे बँधे पुग्गल दरव मूर्तिमानसौं। यह तौ अचंभौ मोहि ऐसो प्रतिभासै वृंद, अमल मिलाप ज्यौं **"नितंब जुरै कानसौं"** ॥ ६८ ॥

(२८)

रूपादिक जे हैं मूरतीक गुन पुग्गलके, तिनसौं रहित

जीव सर्वथा प्रमानसों। ऐसो है तथापि यह शून्यरूप होत नाहिं, आपनी सुसत्तामें विराजै परधानसों॥ सर्व दर्व सदा निज दर्वित आकार धरे, काहूको आकार कभी मिलै नाहिं आनसों। तैसे ही अरूपी चिदाकार वृंद आतमा है, ताके अब सुनो जैसे बँधत विधानसों॥ ६९॥

रूपी दर्व घटपट आदिक अनेक तथा, ताके गुनपरजाय विविध वितानसों। तिनको अरूपी जीव देखै जानै मलीभांत, यह तो अबाध सिद्ध मतच्छ प्रमानसों॥ जो न होत अमूरूप वस्तु यह आतमा तौ, कैसे ताहि देखतौ औ जानतौ महानसों॥ तैसे ताके बंधको विधान हू सुजानौ वृंद, समिल मिलाप ज्यों "शबद जुरै कानसों"॥ ७०॥

दोहा।

देखन जाननकी शकति, जो न जीवमहँ होत।
तब किहि विधि संसारमें, बंधन होत उदोत॥ ७१॥
मोह राग रुष भावकरि, देखत जानत जीव।
ताही भावविकारसों, आपु हि बँधत सदीव॥ ७२॥
राग चिकनताई भई, दोष रुच्छता भाय।
याहीके सुनिमित्ततैं, पुदगलकरम बँधाय॥ ७३॥
आतमके परदेश प्रति, दर्वित कर्म अनाद।
तिनसों नूतन करमको, बंध परत निरवाद॥ ७४॥
यह विवहारिक बंधविधि, निहचै बंध न सोय।
जहँ अशुद्ध उपयोग है, मोह त्रिकंटक जोय॥ ७५॥

मनहरण ।

जैसे ग्वालबालगन बैल साँचे माटीनिके, देखि जानि तिन्हैं अपनाये राग जोरसों । तिनके निकट कोऊ मारै छोरै बैलनिको, तबै ते अधीर होय रोवैं धोवैं शोरसों ॥ तहां अब करो तो विचार भेदज्ञानी वृंद, बंधे वे बयल सो की ममताकी डोरसों । तैसें पुदगल कर्म बाहिज निमित्त जानो, बंध्यौ जीव निहचै अशुद्धता-मरोरसों ॥ ७६ ॥

(२९)

माधवी ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, इन इंद्रिनिकी सतसंगति पाई ।
बहु भांतिके इष्ट अनिष्टविषै, तिनको तित जोग मिलै जब आई ॥
तव राग रु दोष विमोह विभावनि,—सों तिनमें मनवै लपटाई ।
तिनहीकरि फेरि बंधै तहँ आपु, यों भाविकबंधकी रीति बताई७७ ॥

(३०)

मनहरण ।

रागादि विभावनिमें जौन भावकरि जीव, देखैं जानैं इंद्रिनिके विषय जे आये हैं । ताही भावनिसों तामें तदाकार होय रंगै, तासों फेरि बंधै यही भावबंध भाये हैं ॥ सोई भावबंध मानों चीकन रुखाई भयो, ताहीके निमित्तसेती दर्वबंध गाये हैं । जामें आठ कर्मरूप कारमानवर्गना हैं, ऐसे सरवज्ञ ...को बताये हैं ॥ ७८ ॥

(३१)

पुव्वबंध पुग्गलसों फरस विभेदकरि, नयो कर्मवर्गनाके पिंडको गथन है । जीवके अशुद्ध उपयोग रागआदिकरि, होत मोह रागादि विभावको नथन है ॥ दोऊको परस्पर सँजोग एक थान सोई, जीव पुग्गलातमके बंधको कथन है । ऐसे तीन बंधभेद वेदमें निवेद वृंद, भेदज्ञानीजनित सिद्धांतको मथन है ॥ ७९ ॥

(३२)

असंख्यात प्रदेश प्रमान यह आतमा सो, ताके परदेश विषै ऐसे उर आनिये । पुग्गलीक कारमान वर्गनाको पिंड आय, करत प्रवेश जथाजोग सरधानिये ॥ फेरि एक छेत्र अवगाहकरि बंधत है, थिति परमान संग रहैं ते सुजानिये । देय निज रस खिर जाहिं पुनि आपुहिसों, ऐसो भेद भर्म छेद भव्य वृंद मानिये ॥ ८० ॥

दोहा ।

कायवचनमन जोगकरि, जो आतम परदेस ।
कंपरूप होवैं तहां, जोग बंध कहि तेस ॥ ८१ ॥
तासु निमित्तैं आवही, करमवरगनाखंध ।
सो ईर्यापथ नाम कहि, प्रकृति प्रदेश सुबंध ॥ ८२ ॥
रागविरोध विमोहके, जैसे भाव रहाहिं ।
ताहीके अनुसारतैं, थिति अनुभाग बँधाहिं ॥ ८३ ॥

(३३)

द्रुमिला।

परदर्वविषैं अनुराग धरै, वसु कर्मनिको सोइ बंध करै।
अरु जो जिय रागविकार तजै, वह मुक्तवधूकहँ वेगि वरै॥
यह बंध रु मोच्छसरूप जथारथ, थोरहिमें निरधार धरै।
निहचै करिके जगजीवनिके, तुम जानहु वृंद प्रतीत भरै॥८४॥

चौपाई।

रागभाव प्रनवैं जे आँधे। नूतन दरव करम ते बाँधे॥
वीतरागपद जो भवि परसै। ताको मुक्तअवस्था सरसै॥८५॥

दोहा।

रागादिकको त्यागि जे, वीतराग हो जाहँ।
चले जाहिं वैकुंठमें, कोइ न पकरै बाहँ॥ ८६॥

(३४)

मनहरण।

परिनाम अशुद्धतैं पुग्गलकरम बँधै, सोई परिनाम-राग-दोषमोहमई है। तामें मोह दोष तो अशुभ ही है सदा काल, रागमें दुभेद वृंद वेद वरनई है॥ पंच परमेश्वरकी भक्ति धरमानुराग, यह शुभराग भाव कथंचित लई है। विषय कषायादिक तामें रतिरूप सो, अशुभ राग सरवथा त्यागजोग तई है॥ ८७॥

(३५)

परवस्तुमाहिं जो पुनीत परिनाम होत, ताको पुन्य नाम

वृंद जानो हुल्संत है। तैसे ही अशुभ परिनाम परवस्तु विषै, ताको नाम पाप संक्लेशरूप तंत है ॥ जहां परवस्तु विषै दोऊ परिनाम नहिं, केवल सुसत्ताहीमें शुद्ध वरतंत है। सोई परिनाम सब दुःखके विनाशनको, कारन है ऐसे जिन-शासन भनंत है ॥ ८८ ॥

चौपाई ।

पर परनतितैं रहित विचच्छन। सकलदुःखक्षयकारन लच्छन ॥ मोच्छवृच्छतरुवीज विलच्छन। शुद्धपयोग गहैं शिवगच्छन ८९

(३६)

मत्तगयन्द ।

थावरजीव निकायनिके, पृथिवी प्रमुखादिक भेद घने हैं। औ त्रसरासि निवासिनके, तनके कितनेक न भेद बने हैं ॥ सो सब पुग्गलदर्वमई, चिनमूरतितैं सब भिन्न ठने हैं। चेतन हू तिन देहनितैं, निहचै करि भिन्न जिनिंद भने हैं ९०

(३७)

जो जन या परकारकरी, निज औ परको नहिं जानत नीके। आपसरूप चिदानँद वृंद, तिसे न गहै मदमोह वमीके ॥ सो नित मैं तनरूप तथा, तन है हमरो इमि मानत ठीके। भूरि भवावलिमाहिं भ्रमै, निहचै वह मोह महामद पीके ॥९१॥

(३८)

मनहरण ।

आतमा दरव निज चेतन सुपरिनाम, ताहीको करत सदा ताहीमें रमत है। आपने सुभावहीको करता है निहचै सो, निजाधीन भाव भूमिकाहीमें गमत है ॥ पुग्गलदरवमंई जेते हैं प्रपंच संच, देहादिक तिनको अकरता समत है। ऐसो भेद भेदज्ञान नैनतैं विलोको वृंद, याही विना जीव भव भाँवरी भमत है ॥ ९२ ॥

(३९)

द्रुमिला ।

यह जीव पदारथकी महिमा, जगमें निरखो भ्रमको हरिके। मधि पुग्गलके परिवर्ततु है, सब कालविषै निहचै करिके ॥ तब हू तिन पुग्गल कर्मनिको, न गहै न तजै न करै धरिके। वह आपुहि आप सुभावहितैं, प्रनवै सतसंगतिमें परिके॥९३॥

(४०)

मनहरण ।

सोई जीवदर्व अब संसार अवस्थामाहिं, अशुद्ध चेतना जो विभावकी ढरनि है। ताहीको बन्यौ है करतार ताके निमित्तसों, याके आठ कर्मरूप धूलिकी धरनि है ॥ सोई कर्म धूल मूल भूलको सुफल देहि, फेरि काहू कालमाहिं तिनकी झरनि है। ऐसे बंधजोग भाव आपनो विभाव जानि, त्यागै भेदज्ञानी जासों संसृत तरनि है ॥ ९४ ॥

(४१)

जबै जीव रागदोष समल विभावजुत, शुभाशुभरूप परिनामको ठटत है । तबै ज्ञानावरनादि कर्मरूप परज याके, जोग द्वार आयके प्रदेशपै पटत है ॥ जैसे रितु पावसमें धारोंधर धारनितैं, धरनिमें नूतन अंकुरादि अटत है । तैसे ही शुभाशुभ अशुद्ध रागदोषनितैं, पुग्गलीक नयौ कर्म बंधन बटत है ॥ ९५ ॥

दोहा ।

तातैं पुदगल दरव ही, निज सुभावतै मीत ।
अति विचित्रगति कर्मको, कर्ता होत प्रतीत ॥ ९६ ॥

(४२)

मनहरण ।

सो असंख प्रदेश प्रमान जगजीवनिके, मोह राग दोष ये कषायभाव संग है । ताहीतैं करमरूप रजकरि बँधे ऐसे, सिद्धांतमें कही वृंद बंधकी प्रसंग है ॥ जैसे पट लोध फटकड़ी आदितैं कसैलो, चढ़त मजीठ रंग तापै सरवंग है । तैसे चिदानंदके असंख परदेशपर, चढ़त कषायतैं करम रज रंग है ॥ ९७ ॥

(४३)

बंधको कथन यह थोरेमें गथन निहचै मथनकरि ज्ञान तुलामें तुल्यु है। जीवनिके होत सो दिखाई जिनराज मुनि,–

मंडलीको जानैं उरलोचन खुलतु है ॥ यासों विपरीत जो है पुद्गलीक कर्मबंध, सो है विवहार वृंद काहेको भुलतु है। निज निज भावहीके करता सरव दर्व, यही भूले जीव कर्म-झूलना झुलतु है ॥ ९८ ॥

पुण्यपापरूप परिनाम जो हैं आतमाके, रागादि सहित ताको आपु ही है करता। तिन परिनामनिकों आप ही गहन करै, आपु ही तजन करै ऐसी रीति धरता ॥ तातैं इस कथनको कथंचित शुद्ध दरवारथीक नय ऐसे भनी भर्म-हरता। पुग्गलीक दर्व कर्मको है करतार सो, अशुद्ध विवहार-नयद्वारतैं उचरता ॥ ९९ ॥

प्रश्न। छप्पय।

रागादिक परिनाम बंध, निहचै तुम गाये।
फेरि शुद्ध दरवारथीक नय, विषय बताये ॥
पुनि सो गहने जोग, कहत हौ हे मुनिराई।
वह रागादि अशुद्ध, दरवको करत सदाई ॥
यह तो कथनी नहिं संभवत, क्यों अशुद्धको गाहिये।
याको उत्तर अब देयके, संशय मेटो चाहिये ॥ १०० ॥

उत्तर। दोहा।

रागादिक परिनाम तौ, है अशुद्धतारूप।
संसारमें, है अशुद्ध चिद्रूप ॥ १०१ ॥

यामें तौ संदेह नहिं, है परंतु संकेत।
यहाँ विविच्छाभेदतें, कथन करी जिहि हेत॥ १०२॥

छप्पय।

शुद्ध दरवका कथन, एक दरवाश्रित जानों।
और दरवका और सों(?), अशुद्धता सो(?) मानो॥
यही अपेच्छा यहां, कथनका जोग बना है।
सो पुनि निहचै बंध, नियत नय गहन भना है॥
ताको सुहेत अब कहत हौं, सुनो गुनो मन लायकै।
जातैं सब संशय दूर है, सुथिर होहु शिव पायकै॥१०३॥

चौबोला।

जो यह जीव लखै अपनेको, निज विकारतें बंध धरै।
तौ विकार तजि वीतराग है, छूटन हेत उपाय करै॥
जो परकृत बंधन समुझै तब, वेदांतीवत नाहिं डरै।
यही अपेच्छा यहां कथन है, समुझै सो भवसिंधु तरै॥१०४॥

(४४)

मनहरण।

जाकी मति मैली ऐसी फैली जो शरीरपर, दर्वहीको

दोहा।

है अशुद्ध नयको विषय, ममता मोह विकार।
ताहि धरे वरतै सु तौ, लहै न पद अविकार ॥ १०६ ॥

(४५)

मनहरण।

मैं जो शुद्ध बुद्ध चिनमूरत दरव सो तौ, परदर्वनिको न भयो हौं काहू कालमें। देहादिक परदर्व मेरे ये कदापि नाहिं, ये तौ निजसत्ताहीमें रहैं सब हालमें ॥ मैं तौ एक ज्ञानपिंड अखंड परमजोत, निर्विकल्प चिदाकार चिदानंद चालमें। ऐसें ध्यानमाहिं जो सुध्यावत सरूप वृंद, सोई होत आतमाको ध्याता वर भालमें ॥ १०७ ॥

दोहा।

शुद्ध दरवनयको गहै, निहचैरूप अराध।
शुद्ध चिदातम सो लहै, मैटै कर्म उपाध ॥ १०८ ॥

(४६)

मनहरण।

हूं जो हौं विशुद्ध भेदज्ञान नैनधारी सो, निजातमा दरव ताहि ऐसे करि जानौ हौं। सहज सुभाव निज सत्ताहीमें ध्रौव सदा, ज्ञानके सरूप दरसनमई मानौ हौं ॥ परभाव तजे तातैं शुद्ध औ अतिंद्री सर्व, पदारथ जानेंतें महारथ प्रमानौ हौं। आपने सरूपमें अचल परवस्तुकों न, अवलंब करै यातैं अनालंब ठानौ हौं ॥ १०९ ॥

दोहा ।

ज्ञानरूप दरसनमई, अतिंद्री ध्रुव धार ।
महा अरथ पुनि अचलवर, अनालंब अविकार ॥ ११० ॥
सात विशेषनि सहित इमि, लख्यौ आतमाराम ।
ताही शुद्ध सरूपमें, हम कीनौ विसराम ॥ १११ ॥
पंच विशेषनिको कथन, करि आये बहु थान ।
अनालंब अरु महारथ, इनको सुनो बखान ॥ ११२ ॥

मनहरण ।

कर्ममल नासिके प्रकाश होत ज्ञान जोत, सो तौ एक-रूप ही अभेद चिदानंद है । तासमें सभेद वृंद ज्ञेय प्रति-विंब सब, तासकी सपेच्छ भेद अनंत सुछंद है ॥ पांचों जड़-दर्वके सरूपको दिखावै सोई, याहीतैं महारथ कहावत अमंद है । परवस्तुको सुभाव कभी न अलंब करै, तातैं अनालंब याकों भाषैं जिनचंद है ॥ ११३ ॥

(४७)

दोहा ।

तन धन सुख दुख मित्र अरि, अध्रुव भने जिनभूप ।
ध्रौव निजातम ताहि गहु, जो उपयोगसरूप ॥ ११४ ॥

(४८)

मत्तगयन्द ।

जो भवि होंय महाव्रतधारक, या सु अनुव्रतकारक कोई ।
या परकारसों जो परमातम, जानिके ध्यावत है थिर होई ॥

सो सुविशुद्ध सुभाव अराधक, मोहकी गांठि खपावत सोई ।
ग्रंथनिको सब मंथनिकै, निरग्रंथ कथ्यौ रससार इतोई॥११५॥

(४९)

मनहरण ।

अनादिकी मोह दुरबुद्धिमई गांठि ताहि, जाने दूर कियौ निज भेदज्ञान वलतैं । ऐसो होत संत वह इंद्रिनिके सुख दुख, सम जानि न्यारे रहै तिनके विकलतैं ॥ सोई महाभाग मुनिराजकी अवस्थामाहिं, रागदोष भावको विनाशै मूल थलतैं । पावै सो अखंड अतिइंद्रिय अनंत सुख, एक रस वृंदावन रहै सो अचलतैं ॥ ११६ ॥

(५०)

मोहरूप मैलको खिपावै भेदज्ञानी जीव, इंद्रिनिकै विषैसों विरागता सु पुरी है । मनको निरोधिकै सुभावमें सुथिर होत, जहां शुद्ध चेतनाकी ज्ञानजोत फुरी है ॥ सोई चिनमूरत चिदातमाको ध्याता जानो, पर वस्तुसे भी जाकी प्रीति रीति दुरी है । ऐसे कुंदकुंदजी बखानी ध्यान ध्याता वृंद, सोई सरधानै जाकी मिथ्यामति चुरी है ॥ ११७ ॥

प्रश्न–दोहा ।

जो मन चपल पताकपट, पवन दीपसम ख्यात ।
सो मन कैसै होय थिर, उत्तर दीजे भ्रात ॥ ११८ ॥

उत्तर-

पांचों इंद्रिनके जिते, विषय भोग जगमाहिं ।
तिनहीसों मन रातदिन, भ्रमतो सदा रहाहि ॥ ११९ ॥
सोइ घटे वैरागता, होत तजै सब भोग ।
निज सुभाव सुखमाहिं तब, लीन होय उपयोग ॥१२०॥
तहां सुमनको खैंचके, एक निजातम भाव ।
तामधि आनि झुकाइये, भेदज्ञानपरभाव ॥ १२१ ॥
तहां सो मनकी यह दशा, होत औरसे और ।
जैसे फाग-जहाजको, सूझै और न ठौर ॥ १२२ ॥
जो कहुं इत उतको लखै, तौ न कहूं विसराम ।
तब हि होय एकाग्र मन, ध्यावै आतमराम ॥ १२३ ॥
ऐसे आतमध्यानतैं, मिलै अतिंद्री शर्म ।
शुद्ध बुद्ध चिद्रूपमय, सहज अनाकुल धर्म ॥ १२४ ॥

(५१)

मनहरण ।

घातिकर्म घाति भलीभांत जो प्रतच्छ सर्व, वस्तुको सरूप निज ज्ञानमाहिं धरै है । ज्ञेयनिके सत्तामें अनंत गुन-पर्ज शक्ति, ताहूको प्रमानकरि आगे विसतरै है ॥ असंदेह-रूप आप ज्ञाता सिरताज वृंद, संशय विमोह सब विभ्रमको हरै है । ऐसो जो श्रमण सरवज्ञ वीतराग सो, बतावो अब कौन हेत काको ध्यान करै है ॥ १२५ ॥

मोह उदै अथवा अज्ञानतासों जीवनिके, सकल पदारथ प्रतच्छ नाहि दरसै। यातैं चित चाहकी निवाह हेत ध्यान करै, अथवा संदेहके निवारिवेको तरसै ॥ सो तो सरवज्ञ वीतरागजूके मूल नहिं, घातिविधि घातैं ज्ञानानंद सुधा वरसै। इच्छा आवरन अभिलाष न संदेह तब, कौन हेत ताको ध्यावै ऐसो संशै परसै ॥ १२६ ॥

(५२)

ज्ञानावरनादि सर्व बाधासों विमुक्त होय, पायो है अवाध निज आतम धरम है। ज्ञान और सुख सरवंग सब आतमाके, जासों परिपूरित सो राजै अभरम है ॥ इंद्रीसों रहित उतकिष्ट अतिइंद्री सुख, ताहीको एकाग्ररूप ध्यावत परम है। ये ही उपचारकरि केवलीके ध्यान कह्यौ, भेदज्ञानी जानै यह भेदको मरम है ॥ १२७ ॥

दोहा।

अतिइंद्री उतकिष्ट सुख, सहज अनाकुलरूप।
ताहीको एकाग्र निज, अनुभवते जिनभूप ॥ १२८ ॥
अनइच्छक बाधा रहित, सदा एक रस धार।
यही ध्यान तिनके कह्यौ, नय उपचार अधार ॥ १२९ ॥
पुव्व कर्मकी निरजरा, नूतन बंधै नाहिं।
यही ध्यानको फल लखौ, वृंदावन मनमाहिं ॥ १३० ॥

१ घातिया कर्म।

(६३)

मनहरण ।

या प्रकार पूरवकथित शिवमारगमें, सावधान होय जो विशुद्धता सँभारी है । चरमशरीरी जिन तथा तीरथंकर, जिनिंदेव सिद्ध होय वरी शिवनारी है ॥ तथा एक दोय भवमाहिं जे मुकत जाहिं, ऐसे जे श्रमन शुद्धभावअधि- कारी है । तिन्हें तथा ताही शिवमारगको वृंदावन, वार वार भली भाँति वंदना हमारी है ॥ १३१ ॥

दोहा ।

बहुत कथन कहँ लघु करौं, जो शुद्धातम तच्च[1] ।
ताहीमें परवर्त[2] करि, गये जु तदगतँ[3]-रच ॥ १३२ ॥
ऐसे सिद्धनिकों तथा, आतमअनुभवरूप ।
शुद्ध मोख-मगको नमों, दरवितभाव सरूप ॥ १३३ ॥

(६४)

मनहरण ।

तातैं जैसे तीरथेश आदि निजरूप जानि, शुद्ध सरधान ज्ञान आचरन कीना है । कुंदकुंद स्वामी कहैं ताही परकार हम, ज्ञायक सुभावकरि आपै आप चीना है ॥ सर्व पर- वस्तुसों ममत्वबुद्धि त्यागकरि, निर्ममत्व भावमें सु विस- राम लीना है । सोई समरसी वीतराग साम्यभाव वृंद, मुक- तको मारग प्रमानत प्रवीना है ॥ १३४ ॥

१ तत्त्व । २ प्रवृत्ति । ३ तद्गतरक्त—तल्लीन ।

मेरो यह ज्ञायक सुभाव जो विराजत है, तासों और ज्ञेयनिसों ऐसो हेत झलकै । कैधों वे पदारथ उकीरे ज्ञान थंभमाहिं, कैधों ज्ञान पटविषैं लिखे हैं अचलकै ॥ कैधों ज्ञान कूपमें समाने हैं सकल ज्ञेय, कैधों काहू कीलि राखे त्याग तन पलकै । कैधों ज्ञानसिंधुमाहिं डूबे घों लपटि रहे, कैधों प्रतिबिंबित हैं सीसेके महलकै ॥ १३५ ॥

ऐसो ज्ञान ज्ञेयको बन्यो है सनबंध तऊ, मेरो रूप न्यारो जैसें चंद्रमा फलकमें[1] । अनादिसों और रूप भयो है कदापि नाहिं, ज्ञायक सुभाव लिये राजत खलकमें ॥ ताको अब निहचै प्रमान करि वृंदावन, अंगीकार कियौ भेदज्ञानकी झलकमें । त्यागी परमाद परमोद धारि ध्यावत हों, जातैं पर्म धर्म शर्म पाइये पलकमें ॥ १३६ ॥

दोहा।

मेरो रूप अनादितैं, थो याही परकार ।
मोहि न सूझयो मोहवश, ज्यों मृग मृगमद[2] धार ॥ १३७ ॥
अब जिनप्रवचनदीपकरि[3], आप रूप लखि लीन ।
तजि आकुल भ्रम मोहमल, भये तासुमें लीन ॥ १३८ ॥
अब वंदों शिवपंथ जो, शुद्धपयोग सरूप ।
इक अखंड वरतत त्रिविधि, अमल अचल चिद्रूप ॥ १३९
भये जासु परसादतैं, शुद्ध सिद्ध भगवान ।
सुमनसहित वंदों तिन्हें, भावसहित धरि ध्यान ॥ १४० ॥
और जीव तिहि मगविषैं, जे वरतत उमगाय ।
भावभगतजुत प्रीतिसों, तिन्हें नमों सिरनाय ॥ १४१ ॥

---

१ दर्पणके । २ कस्तूरी । ३ जैन आगम ।

कुन्दकुन्द श्रीगुरु भये, भवदधितरन जिहाज।
प्रवचनसार प्रकाशके, सीरे भविजन काज ॥ १४२ ॥
ते गुरु मो मन मल हरो, प्रगटो स्वपरविवेक।
आपा पर पहिचानमें, रहै न भर्म रतेकै ॥ १४३ ॥

चौपाई।

पूरन होत अबै अविकार। हेयादेय छटो अधिकार।
आगे चारितको अधिकार। होत अरंभ शुद्ध सुखकार ॥ १४४ ॥

छन्द कवित्त।

मोह भरम तम मरचो अभितर, होत न आपा पर निरधार।
पुग्गल-जनित ठाठ बहुविधि लखि, ताकों आपा लखत गँवार॥
आपरूप जो वस्तु विलच्छन, ज्ञायक लच्छन धरै उदार।
भेदज्ञान विन सो नहिं सूझत, है वह "तिनकै ओट पहार" १४५

दोहा।

जैवंतो जिनदेव जो, पायौ शुद्ध सरूप।
कर्म कलंक विनाशिके, भये अमल चिद्रूप ॥ १४६ ॥
सो इत नित मंगल करो, सुखसागरके इंदु।
वृंदावन वंदन करत, अहै वरन, जुत विंदु ॥ १४७ ॥

इति श्रीमत्कुंदकुंदाचार्यकृत परमागम श्री प्रवचनसारजीकी वृंदावन-कृत भाषाविषै द्रव्यनिका विशेषरूप कथनका अधिकारके पीछें विवहारिक जीवदशा ज्ञेयतत्त्वकथन ऐसा छठ्यो अधिकार सम्पूर्णम्।

मिती पौषवदी ९ भौम सवत् १९०५ काशीजीमें वृंदावनने लिखी स्वपरोपकाराय। इहातांई गाथा २०२। और भाषाके छंद सब ७२८ भये सो जयवंत होहु—

---

१ पूर्ण किये। २ रवी भर भी। ३ तृणके अर्थात् तिनकाके।

श्रीं नमः सिद्धेभ्यः

अथ सप्तमोश्चारित्राधिकारः।

मंगलाचरण।

दोहा।

श्रीअरहंत प्रनाम करि, सारद सुगुरु मनाय।
विघनकोट जातैं कटैं, नित नव मंगलदाय ॥ १ ॥
चारितको अधिकार अब, शिवसुखसाधनहेत।
लिखों ग्रंथ–पथ पेखकै, जो अबाध सुख देत ॥ २ ॥

अथ मोक्षमिलाषीका लक्षण। मनहरण।

मोच्छअभिलाषी भव्य जीवको प्रथम सर्व, दर्वनिको जथारथ ज्ञान भयो चहिये। तैसैंही चारित्रको सरूप भले जान करि, ज्ञानके सुफलहेत ताकों तब गहिये॥ आतमीक ज्ञानसेती जेती अविरोध क्रिया, इच्छा अहंकार तजि ताहीको निवहिये। ऐसे ज्ञान आचरन दोनोंमाहिं वृंदावन, एकताई भयेहीसों अखै सुख लहिये ॥ ३ ॥

दोहा।

ग्रंथारभ विषैं सुगुरु, जिहिकरि वंदे इष्ट।
तिनही गाथनिसों यहां, नमें पंचपरमिष्ट ॥ ४ ॥
फिर गुरु कहत दयाल वर, जिमि हम इष्ट मनाय।
अमलज्ञान दरसनमई, पायौ साम्य सुभाय ॥ ५ ॥
तैसेही भवि वृंद तुम, दुखसों छूटनहेत।
यह मुनिमारग आचरौ, जो सुभावनिधि देत ॥ ६ ॥

(१)

दुमिला ।

अपने सुकुटंव समूहनिसों, वह पूछिकै भेदविज्ञानधनी ।
गुरु मात पिता रमनी सुतसों, निरमोहित होय विराग मनी ॥
तव दर्शन ज्ञान चरित्र तथा, तप वीरज पंच अचार गनी ।
इनको दिढ़ताजुत धारत है विधि,—सों सविवेक प्रमाद हनी॥७॥

अथ बन्धुवर्गसंबोधन-विधि । चौपाई ।

मुनिमुद्रा जो धारन चहै । सो इमिसव कुटुंवसों कहै ।
जो यह तनमें चेतनराई । सो आतम तुम्हरो नहिं भाई ॥८॥
यह निहचैकरि तुम अवधारो । तातैं मोसों ममता छाँरो ॥
मो उर ज्ञानजोत परकासे । आपुहि आप बंधु ढिग भासे॥९॥

मातुपिता संबोधन ।

इस जनके तनके पितुमाता । अहो सुनो तुम वचन विख्याता ॥
इस तनको तुमने उपजाया। आतमको तुम नहिं निपजाया॥१०॥
यह निहचैकरके अवधारो । तातैं मोसों ममता छाँरो ॥
ज्ञानजोतिजुत आतमरामा । यह प्रगट्यौ है चिद्गुनग्रामा॥११॥
अपनो सहजसुभाव सु सत्ता । सोई मातपिता ध्रुववत्ता ॥
तासों यह अब प्रापत हो है । यातैं मोसों तजिये मोहै॥१२॥

स्त्रीसंबोधनवचन ।

हे इस चेतन तनकी नारी । रमी तु तनसों बहुत प्रकारी ॥
आतमसों तू नाहिं रमी है । यह निहचैकरि जानि सही है॥१३॥

तातैं इस आतमसों ममता । तजि करि तू अब धरि उर समता॥
मम घट ज्ञानजोत अब जागा॥विषयभोग विषसम मोहि लागा१४
निजअनुभूतरूप वरनारी । तासों रमन चहत अविकारी ॥
इहि विधि परविरागजुत वानी । कहै नारिसों भेदविज्ञानी१५

पुत्रसंबोधन वचन ।

हो इस जनके तनके जाये । पुत्र सुनो मम वचन सुहाये ॥
तू इस आतमसों नहिं जाया । यह निहचैकरि समुझ सु भाया१६
तातैं तुम मम ममता त्यागो । समताभाव-सुधारस पागो ॥
यह आतम निजज्ञानजोतिकर।प्रगट भयो उर-मोह-तिमर-हर१७
याके सुगुन सुपूत सयाने । हैं अनादितैं संग प्रधाने ॥
तिनसों प्रापति होंन चहे हैं । तुमसों यह समुझाय कहे हैं१८॥

दोहा ।

बंधुवरगसों आपुको, या विधि लेय छुड़ाय ।
कहि विरागके वचन वर, मुनिपद धारै जाय ॥ १९ ॥
जो आतमदरसी पुरुष, चाहै मुनिपद लीन ।
सो सहजहि सुकुटुंवसों, है विरकत परवीन ॥ २० ॥
ताहि जु आय परै कहूं, कहिवेको सनबंध ।
तो पूरव परकारसों, कहै वचन निरबंध ॥ २१ ॥
कछु ऐसो नहिं नियम जो, सब कुटुंब समुझाय ।
तबही मुनिमुद्रा धरै, बसै सु वनमें जाय ॥ २२ ॥
सब कुटुंब काहू सुविधि, राजी नाहीं होय ।
गृह त[illegible] मुनिपद धरनमैं, यह निहचै करि जोय ॥२३॥

जो कहुं बनै बनाव तौ, पूरवकथित प्रकार ।
कहि विरागजुत वचन वर, आप होय अनगार ॥ २४ ॥
तहां बंधुके वर्गमें, निकटभव्य कोइ होय ।
सुनि विरागजुत वचन तित, मुनिव्रत धारै सोय ॥२५॥

अथ पंचाचारग्रहणविधि ।

अब जिस विधिसों गहत हैं, पंचाचार पुनीत ।
लिखों सुपरिपाटीसहित, जथा सनातनरीत ॥ २६ ॥

मनहरण ।

आतमविज्ञानी जीव आपने सरूपको, सुसिद्धके समान देखि जानि अनुभवता । उपाधीक भावनितैं आपुको नियारो मानि, शुभाशुभक्रिया हेय जानिके न भवता ॥ पुव्वबद्ध उदैतैं विकारपरिनाम होत, रहै उदासीन तहां आकुल न पवता । सो तो परदर्वनिको त्यागी है सुभावहीतैं, गहै ज्ञान-गुन वृंद तामें लवलवता ॥ २७ ॥

दोहा ।

ऐसे ज्ञानी जीवको, अब क्या त्यागन जोग ।
अंगीकार करै कहा, जहँ सुभावरस भोग ॥ २८ ॥
पै चारित्रसुमोहवश, होहिं शुभाशुभभाव ।
तासु अपेच्छातैं तिन्हैं, त्याग गहन दरसाव ॥ २९ ॥
प्रथमहिं गुनथानकनिकी, परिपाटी परमान ।
अशुभरूप परनत्ति तजै, निहचै सो बुधिवान ॥ ३० ॥

पीछे शुभ परनतिविषैं, रतनत्रय विवहार ।
पंचाचार गहन करै, सो जतिमति अनुसार ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

अहो आठविधि ज्ञानाचार । कालाध्ययन विनय हितकार ॥
उपाधान बहुमान विधान । और अनिह्नव भेद प्रमान ॥ ३२ ॥
अरथ तथा विंजन उर आन । तदुभयसहित आठ इमि जान ।
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नहीं ॥ ३३ ॥
[illegible] ातम निज लहों ॥
[illegible] गहै गुन साज ३४

अथ दर्शनाचारधारणविधि ।

अहो आठ दरशनआचारा । निःशंकित निःकांछित धारा ॥
निरविचिकित्सा निरमूढ़ता । उपगूहन थिति[1] वाच्छलता[2] ॥
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ३६॥
तुवप्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
समदिष्टी भविजीव प्रवीन । हिये विवेकदशा अमलीन ॥३७॥

अथ चारित्राचारधारणविधि ।

अहो सुकतिमगसाधनहार । तेरहविधि चारित्राचार ॥
पांच महाव्रत गुपति सु तीन । पांचों समिति भेद अमलीन ३८
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ।
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जब लों-शुद्धातम निज लहों ३९॥

---

१ स्थितिकरण । २ वात्सल्य ।

तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
सुपरदया दोनों उर धरै । होय दिगंबर शिवतिय वरै ॥४०॥

अथ तपाचाराधारणविधि ।

अहो दुवादश तप आचारा । अनशन अवमोदर्य उदारा ।
व्रतपरिसंख्या रसपरित्यागी । विविक्तैसज्यासन बड़भागी
कायकलेश छ बाँहिज येहा । प्राँच्छित विनय सकल गुनगेहा ॥
वैयाव्रतरत नित स्वाधाये । ध्यानसहित व्युतसर्ग बताये ४२
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नहीं ।
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥४३॥
तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
उभयभेद तप खेद न धरै । महा हरष मनमें विसतरै ॥४४॥

अथ वीर्याचारावधारणविधि ।

अहो सुशकति बढ़ावनिहार । वीर्याचार अचारअधार ।
मैं निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नहीं ॥४५॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥
तुव प्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज॥४६॥

दोहा ।

पंचाचार पुनीतको, इहिविधि धारै धीर ।
और कथन आगे सुनो, जो मेटै भवपीर ॥ ४७ ॥

(२)

मनहरण ।

पंचाचारविधिमें प्रवीन जे अचारज जो, मूलोत्तर गुनकरि

१ विविक्तशय्यासन । २ बाह्य । ३ प्रायश्चित्त । ४ कायोत्सर्ग ।

पूरित, अभंग है। कुल रूप वयकी विशेपताई लिये वृंद, मुनिनिको प्रियतर लागै सरवंग है॥ तापै यह जाय सिर नाय कर जोरि कहै, स्वामी मोहि अंगीकार कीजिये उमंग है। ऐसे जब कहै तब स्वामी अंगीकार करै, तबै वह नयो मुनि रहै संग संग है॥ ४८॥

अथ आचार्यलक्षण। चौपाई।

पंचाचार आप आचरहीं। औरनिको तामें थिर करहीं।
दोनोंविधिमें परम प्रवीने। निज अनुभव समतारस भीने॥४९॥
जे उत्तमकुलके अवतारी। जिनहिं निशंक नमहिं नरनारी।
रहितकलंक क्रूरता त्यागी। सरलसुभाव सुजसि बड़भागी ५०
हीनकुली नहिं वंदनजोगू। ताके होहि न शुद्धपयोगू।
कुलक्रमके क्रूरादि कुभावैं। हीनकुलीमें अवशि रहावैं॥५१॥
यातैं कुलविशेपताधारी। उचितकुली पावै पद भारी।
अरु जिनकी बाहिज छवि देखी। यह प्रतीति उर होत विशेखी५२
है इनके घट शुद्धप्रकासा। साम्यभाव अनुभव अभ्यासा।
अंतरंगगत बाहिज दरसै। रूपविशेप यही सुख सरसै॥५३॥
बालक तथा बुढ़ापामाहीं। बुद्धि चपल अरु विकल रहाहीं॥
तिनसों रहित सूरि परवाना। धीर बुद्धि गुन कृपानिधाना५४
जोवनदशा काममद व्यापै। तासों वर्जित अचलित आपै।
यह विशेपता वयक्रमकेरी। ताहि धरै आचारज हेरी॥५५॥

धरैं सुगुवय वर्जितदूषन। शीलसिंधु गुनरतनविभूषन।
कियाकांड सिद्धांतनिके मत। कहि समुझावहिं मुनिजनको सत॥
जो मुनिको दूषन कहुँ लागे। मूलोत्तरगुनमें पद पागै॥
प्राच्छित देय शुद्ध करि लेही। तातैं अतिप्रिय लागत तेही॥५७॥
ऐसे आचारजपै जाई। कहै नवीन मुनी शिर नाई॥
मोकों शुद्धातमको लाहू। हेप्रभु प्रापति करि अवगाहू॥५८॥
तब आचारज कहहिं उदारा। तोको शुद्धातम अविकारा।
ताकी लाभ करावनिहारी। यही भगवती दिच्छा प्यारी॥५९॥
ऐसी सुनि सो मन हरषाई। मानहु रंक महानिधि पाई।
बारबार गुरुको सिरनाई। तब मुनिसंग रहै सो जाई॥ ६०॥

(३)

मनहरण।

मेरे चिनमूरततैं भिन्न परदर्व जिते, तिनको तो मैं न कहूं-भयौ तिहूँकालमें। तेऊ परदर्व मेरे नाहिं जातैं कोई दर्व, काहूको सुभाव न गहत काहू हालमें॥ तातैं इसलोक विषैं मेरी कछु नाहिं दिखै, मेरो रूप मेरे ही चिदातमाकी चालमें। ऐसे करि निश्चै निज इंद्रिनिको जीति जथा,—जातरूपधारी होत ताको नोमौं माल मैं॥ ६१॥

दोहा।

जथाजातको अर्थ अब, सुनो
ग्रंथपंथ निर्ग्रंथ [illegible]

स्वयंसिद्ध जैसो कछुक, है आतमको रूप।
तैसो निजघटमें धरै, अमल अचल चिद्रूप ॥ ६३ ॥
दूजो अर्थ प्रतच्छ जो, जैसो मुनिपद होय।
तैसी ही मुद्रा धरै, दरवलिंग है सोय ॥ ६४ ॥
ऐसे दोनों लिंगको, धारत धीर उदार।
जथाजात ताको कहैं, वरै सोइ शिवनार ॥ ६५ ॥

(४)

अथ द्रव्यलिंगलक्षण। मनहरण।

जथाजात दर्वलिंग ऐसो होत जहां परमानू परमान परिगहन रहतु है। शीस और डाढ़ीके उपारि डारै केश आप, शुद्ध निरगंथपंथ मंथके गहतु है॥ हिंसादिक पंच जाके रंच नाहिं संचरत, ऐसे तीनों जोग संच संच निबहतु है। देह खेह-खानके सँवारनादि क्रियासेती, रहित विराजै जैसी आगम उकतु है ॥ ६६ ॥

अथ भावलिंग।

परदर्वमाहिं मोह ममतादि भावनिको, जहां न अरंभ कहूं निरारंभ तैसो है। शुद्ध उपयोग वृंद चेतनासुभावजुत, तीनों जोग तैसो तहां चाहियत जैसो है॥ परदर्वके अधीन वर्त्तत कदापि नाहिं, आतमीकज्ञानको विधानवान वैसो है। मोखसुखकारन भवोदधि उधारनको, अंतरंगभावरूप जैनलिंग ऐसो है ॥ ६७ ॥

दोहा।

दरवितभावितरूप इमि, जथाजातपद धार ।
अब आगे जो करत है, सुनो तासु विसतार ॥ ६८ ॥

(५)

मनहरण।

परमगुरू सो दर्वभाव मुनिमुद्रा धारि, जथाजातरूप मन-माहिं हरसत है । गुरूको प्रनाम थुति करै तब वारवार, जाके उर आनँदको नीर वरसत है ॥ मुनिव्रतसहित जे क्रियाको विभेद वृंद, तासुको श्रवनकरि हिये सरसत है । ताहीको गहनकरि ताहीमें सुथिर होत, तबै वह मुनिपद पूरो परसत है ॥ ६९ ॥

दोहा।

परम-सुगुरु अरहंत जिन, तथा अचारज जान ।
जिनपै इन दिच्छा गही, तिनहिं नमैं थुति ठान ॥ ७० ॥
सुनि व्रत क्रिया गहन करै, ताहीमें थिर होय ।
तब मुनिपद पूरन लहै, दरवित, भावित दोय ॥ ७१ ॥
रागादिक विनु आपको, लखै सिद्धसमतूल ।
परमसमायिककी दशा, तब सो लहै अतूल ॥ ७२ ॥
प्रतिक्रमन आलोचना, प्रत्याख्यान जितेक ।
जति मति श्रुति अनुसार सो, धारै सहितविवेक ॥ ७३ ॥
तीनोंकालविषैं सो मुनि, तीनों जोग निरोध ।
निज शुद्धातम अनुभवै, वरजित क्रियाविरोध ॥ ७४ ॥

तब मुनिपदपूरन तिन्हें, दरवित भावित जान।
वृंदावन वंदन करत, सदा जोरि जुग पान ॥ ७५ ॥

(६)

मनहरण।

महाव्रत पंच पंच समिति सु संच पंच, इंद्रिनिको वंच केश लुंचत विराजै है। षडावश्य क्रिया दिगअंबर गहिया जल,-हौंन त्यागि दिया भूमिसैन रैन साजै है ॥ दाँतवन करै नाहिं खड़े ही अहार करै, सोऊ एकै वार प्रान धारनके काजै है। येई अठाईस मूलगुन मुनि पदवीके, निश्चैकरि कही जिनराज महाराजै है ॥ ७६ ॥

तेई मूलगुनविर्षे मुनि जो प्रमादी होय, तबै ताकै संजमको छेद भंग होत है। तहां सो अचारज पै जायके प्रनाम करि, मुनिमंडलीके मध्य कहै दोष खोत है ॥ जातैं येई गुन सर्वे निर्विकल्प सामायिक, भावरूप मुनिपदवीके मूल जोत है। तातैं जैसे प्राछित बतावै गुरु तैसे करै, फेरि तामैं थित होत करत उदोत है ॥ ७७ ॥

सोना अभिलाषीको जितेक आभरन ताके, सर्वही गहन जोग जातैं सर्व सोना है। परजाय विना कहूं दरव रहत नाहिं, तातै दर्वगाहीको समस्त ही सलोना है ॥ तैसे मुनिपद-वीके मूल अठाईस गुन, मुनिपद धारै ताको सर्वभेद होना है। एको गुन घटै तबै मुनिपद भंग होय, ऐसो जानि सर्व-माहिं सावधान होना है ॥ ७८ ॥

(७)

छप्पय ।

तिनको मुनिपद गहनविर्षे, जे प्रथमाचारज ।
सो गुरुको है नाम, प्रव्रज्यादायक आरज ॥
अरु जब संजम छेद, भंग होवै तामाहीं ।
जो फिर थापन करै, सो निरयापक कहवाहीं ॥
यों दोय भेद गुरुके तहां, दिच्छादायक एक ही ।
छेदोपस्थापनके सुगुरु, बाकी होहिं अनेक ही ॥ ७९ ॥

दोहा ।

दिच्छा गहने बाद जो, संजम होवै भंग ।
एकदेश वा सर्व ही, ऐसो होय प्रसंग ॥ ८० ॥
तामें फिर जो थिर करहिं, जतिपथरीतिप्रमान ।
ते निर्यापक नाम गुरु, जानो श्रमन सयान ॥ ८१ ॥

(८)

छप्पय ।

जो मुनि जतनसमेत, कायकी क्रिया अरंभत ।
शयनासन उठि चलन, तथा जोगासन थंभत ॥
तहँ जो संजम घात होय, तब सो मुनिराई ।
आपु अलोचनसहित, क्रियाकरि शुद्धि लहाई ॥
यह बाहिज संजम भंगको, आपुहि आप सुदंडविधि ।
करि शुद्ध होहिं आचारमें, जे मुनिवृंद विशुद्धनिधि ॥८२॥

जिस मुनिका उपयोग, सुघटमें भंग भया है ।
रागादिक मल भाव, रतनमें लागि गया है ॥
तिनके हेत उपाय, जो जिनमारगकेमाहीं ।
जती क्रियामें अतिप्रवीन, मुनिराज कहाहीं ॥
तिनके ढिग जाय सो आपनो, दोष प्रकाशै विनय कर ।
जो कहैं दंड सो करै तिमि, तब है शुद्धाचारधर ॥ ८३ ॥

(१२)

मनहरण ।

जाके उर आतमीक ज्ञानजोति जगी वृंद, आपहीमें आपको निहारै तिहूँपनमें । संजमके घातकी न वात जाके बाकी रहै, समतासुभाव जाको आवे न कथनमें ॥ सदाकाल सर्व परदर्वनिको त्यागैं रहै, मुनिपदमाहिं जो अखंड धीर मनमें । ऐसो जब होय तब चाहै गुरु पास रहै, चाहे सो विहार करै जथाजोग वनमें ॥ ८४ ॥

(१३)

सम्यकदरशनादि अनंतगुननिजुत, ज्ञानके सरूप जो विराजे निजआतमा । ताहीमें सदैव परिवर्तत रहत और, मूलगुनमें है सावधान वातघातमा ॥ सोई मुनि मुनिपदवीमें परिपूरन है, अंतरंग बहिरंग दोनों भेद भांतमा । नहीं अविकारी परदर्व परिहारी वृंद, वरै शिवनारी जो विशुद्ध सिद्ध जातमा

(१४)

भोजन उपास औ निवास जे गुफादि कहे, अथवा विहारकर्म जहां आचरत हैं । तथा देहमात्र परिग्रह जो विराजै और, गुरु शिष्य आदि मुनिसंग विचरत हैं ॥ और पुग्गलीक शुद्ध वैनकी उमंगमाहिं, चरचा अनेक धर्मधारा वितरत हैं । येते परदर्वनिको बन्यौ सनबंध तऊ, महामुनि ममता न तासमें धरत हैं ॥ ८६ ॥

दोहा ।

जो इनमें ममता धरै, तजि समतारस रंग ।
तबही शुद्धपयोगमें, मुनिपदवी है भंग ॥ ८७ ॥
तातैं विगतविकार मुनि, वीतरागता धार ।
संगसहित वरतै तऊ, निजरसलीन उदार ॥ ८८ ॥

(१५)

मनहरण ।

जतनको त्यागिकै जु मुनि परमादी होय, आचरन करै विवहार काय करनी । सैनासन बैठन चलन आदि ताकेविषै, चंचलता धारै जो अशुद्धताकी धरनी ॥ तामें सर्वकाल ताको निरंतर हिंसा होत, ऐसे सरवज्ञ वीतरागदेव वरनी । जातैं निज शुद्धभावघातकी बड़ी है हिंसा, तातैं सावधानहीसों शुद्धाचार चरनी ॥ ८९ ॥

दोहा।

जब उपयोग अशुद्धकी, होत प्रबलता चित्त।
तब ही विना जतन मुनी, क्रिया करै सुनि मित्त॥९०॥
तहां शुद्धउपयोगको, होत निरंतर घात।
हिंसा बड़ी यही कही, यातैं मुनिपद घात॥ ९१॥
तातैं जतन समेत निज, शुद्धपयोग सुधार।
सावधान वरतौ सुमुनि, तो पावो भवपार॥ ९२॥

(१६)

छप्पय।

जतन त्यागि आचरन करत, जो मुनिपदधारी।
तहां जीव कोइ मरहु, तथा जीवहु सुखकारी॥
ताकहँ निहचै लगत, निरंतर हिंसादूषन।
वह घातत निजज्ञानप्रान, जो चिद्‌गुनभूषन॥
अरु जो मुनिसमितिविषैं सुपरि,—वरतत हैं तिनके कही।
तनक्रियामाहिं हिंसा लगै, तऊ बंध नाहीं लही॥ ९३॥

दोहा।

हिंसा दोय प्रकार है, अंतर बाहिजरूप।
ताको भेद लिखों यहां, ज्यों भापी जिनभूप॥९४॥
अंतरभाव अशुद्धकरि, जो मुनि वरतत होय।
घातत शुद्धसुभाव निज, प्रबल सुहिंसक सोय॥९५॥
अरु बाहिज विनु जतन जो, करै आचरन आप।
तहँ [illegible] घात हो, वा मति होहु कदाप॥९६॥

अंतर निजहिंसा करै, अजतनचारी धार ।
ताको मुनिपद भंग है, यह निहचै निरधार ॥ ९७ ॥
जे मुनि शुद्धपयोगजुत, ज्ञानप्रान निजरूप ।
ताकी इच्छा करत नित, निरखत रहत सुरूप ॥९८॥
तिनकी कायक्रिया सकल, समितिसहित नित जान ।
तहँ पर कहुँ मरै तऊ, करम न बँधे निदान ॥ ९९ ॥

(१७)

मनहरण ।

जतनसमेत जाको आचरन नाहीं ऐसे, मुनिकी तो उपयोग निहचै समल है । सो तो षटकायजीवबाधाकरि बाँधै कर्म, ऐसे जिनचंद वृंद भाषत विमल है ॥ और जो मुनीश सदाकाल मुनिक्रियाविषै, सावधान आचरन करत विमल है । तहाँ घात होत हू न बँधै कर्मबंध ताकै, रहै सो अलेप जथा पानीमैं कमल है ॥ १०० ॥

(१८)

कायक्रियामाहिं जीवघात होत कर्मबंध, होहु वा न होहु यहां अनेकांत पच्छ है । पै परिग्रहसौं ध्रुवरूप कर्मबंध बँधै, यह तो अबाधपच्छ निहचै विलच्छ है ॥ जातैं अनुराग विना याको न गहन होत, याहीसेती भंग होत संजमको कच्छ है । ताहीतैं प्रथम महामुनि सब त्यागैं संग, पावैं तब उभैविधि संजम जो स्वच्छ है ॥ १०१ ॥

अंतरके भाव विना कायहीकी क्रियाकरि, संगको गहन नाहिं काहू भाँति होत है। अरहंत आदिने प्रथम याको त्याग कीन्हों, सोई मग मुनिनिकों चलिवो उदोत है ॥ शुद्धभाव घातो भावे रातो परिग्रहमाहिं, दोऊ शुद्धसंजमको घाति मूल स्रोत है। ऐसो निरधार तुम थोरेहीमें जानो वृंद, याके धारे जागै नाहिं शुद्ध ज्ञानजोत है ॥ १०२ ॥

(१९)

रूपसवैया।

अंतर चाहदाह परिहरकरि, जो न तजै परिगहपरसंग।
सो मुनिको मन होय न निरमल, संजम शुद्ध करत वह भंग ॥
मन विशुद्ध विनु करम कटैं किमि, जे प्रसंगवश बँधे कुढंग।
तातैं तिलतुप मित हु परिग्रह, तजहिं सरव मुनिवर सरवंग १०३

(२०)

मनहरण।

कैसे सो परिग्रहके होत संत अंतरमें, ममता न होय यह कहां संभवत है। कैसे ताके हेतसों उपाय न अरंभै औ, असंजमी अवस्थाको सो कैसे न पवत है ॥ तथा परदर्वविर्षे रागी भयौ कैसे तब, शुद्धातम साधै सुधा रस भोगवत है। यातैं वीतरागी होय त्यागि परिग्रह निरारंभ होय शुद्धरूप साधो सिखवत है ॥ १०४ ॥

दोहा ।

परिगहनिमित ममत्तता, जो न हियेमहँ होय ।
तब ताको कैसे गहै, देखो मनमें टोय ॥ १०५ ॥
परिगह होते होत ध्रुव, ममता और अरंभ ।
सो घातत सुविशुद्धमय, जो मुनिपद परबंभ ॥ १०६ ॥
तातैं तिलतुष परिमित हु, तजौ परिग्रह मूल ।
इहि जुत जानों मुनिपद, ज्यों अकाशमें फूल ॥१०७॥
तातैं शुद्धातमविषैं, जो चाहो विश्राम ।
तो सब परिगहत्यागि मुनि, होहु लहौ शिवधाम॥१०८॥

(२१)

चौपाई ।

गहन-तजन-मग सेवनहारे । जे मुनि सुपरविवेक सुधारे ।
सो जिस परिगह धारन कीनै । होय न भंग जु मुनिपद लीनै१०९
देशकालको लखिके रूपं । बरतंहु जिमि भाषी जिनभूपं ।
अट्ठाईस मूलगुनमाहीं । दोष कदापि लगै जिमि नाहीं ॥११०॥

दोहा ।

इत शंका कोई करत, मुनिपद तो निरग्रंथ ।
तिनहिं परिग्रहगहन तुम, क्यों भाषत हो पंथ॥१११॥
मुनिमग दोय प्रकार कहि, प्रथमभेद उतसर्ग ।
दुतिय भेद अपवाद है, दोउ साधत अपवर्ग ॥११२॥

चौपाई।

मुनि उतसर्ग-मार्गकेमाहीं। सकल परिग्रह त्याग कराहीं ॥
जातैं तहां एक निजआतम। सोई गहनजोग चिदगातम॥११३॥
तासों भिन्न और पुदगलगन। तिनको तहां त्याग विधिसों भन।
शुद्धपयोगदशा सो जानौ। परमवीतरागता प्रमानौ ॥ ११४ ॥
अब अपवाद सुमग सुनि भाई। जाविधिसों जिनराज बताई ॥
जब परिग्रहतजि मुनिपद धरई। जथाजातमुद्रा आदरई॥११५॥
तब वह वीतरागपद शुद्धी। ततखिन दशा न लहत विशुद्धी ॥
तब सो देशकालकहँ देखी। अपनी शकति सकल अवरेखी॥११६॥
निज शुद्धोपयोगकी धारा। जो संजम है शिवदातारा।
तासु सिद्धिके हेत पुनीती। जो शुभरागसहित मुनिरीती ॥
गहै ताहि तब ताके हेतो। बाहिजसंजम साधन लेतो।
जे मुनिपदवीके हैं साधक। मुनिमुद्राके रंच न बाधक॥११८॥
शुद्धपयोगसुधारन कारन। आगम-उकत करैं सो धारन।
दया ज्ञान संजम हित होई। अपवादी मुनि कहिये सोई॥११९॥

(२२)

मनहरण।

जौन परिग्रह कर्मबंधको करत नाहिं, असंजमवंत जाको जाँचै न कदाही है। ममता अरंभ आदि हिंसासों रहित होय, सोऊ थोरो मुनिहीके जोग ठहराहीं है ॥ दया ज्ञान संजमको साधक सदीव दीखै, संजम सरागहीमें जाकी परछाहीं

है। अपवादमारगी मुनिको उपदेश यही, ऐसो परिग्रह तुम राखो दोष नाहीं है ॥ १२० ॥

दोहा।

यामें हेत यही कहत, पीछी पोथी जानु।
तथा कमंडलुको गहन, यह सरधा उर आनु ॥१२१॥
शुभपरनति संजमविषैं, इनको है संसर्ग।
ताहीतैं इनको गहत, अपवादी मुनिवर्ग ॥ १२२ ॥

(२३)

अहो भव्यवृंद जहां मोक्षअभिलाषी मुनि, देहहूको जानत परिग्रह प्रमाना है। ताहूसों ममत्तभाव त्यागि आचरन करै, ऐसे सरवज्ञवीतरागने बखाना है ॥ तहां अब कहो और कौन सो परिग्रहको, गहन करैंगे जहां त्यागहीको चाना है। ऐसो शुद्ध आतमीक पर्मधर्मरूप उत-सर्गमुनि मारगको कहैं निशाना है ॥ १२३ ॥

(२४)

कायाको अकार जथाजात मुनिमुद्रा धरै, एक तो परिग्रह यही कही जिनंद है। फेर गुरुदेव जो सुतत्त्वउपदेश करैं सोऊ पुग्गलीक वैन गहत अमंद है ॥ बड़ेनिके विनैमें लगावै पुग्गलीक मन, तथा श्रुति पढ़ै जो सुपुग्गलको छंद है। येते उपकर्न जैनपंथमें हैं मुनिनिके, तेऊ सर्व परिग्रह जानो भविवृंद है ॥ १२४ ॥

दोहा।

एक शुद्धनिजरूपतैं, जेते भिन्न प्रपंच।
ते सब परिग्रह जानिये, शुद्धधर्म नहिं रंच ॥ १२५ ॥
तातैं इनको त्यागिके, गहो शुद्धउपयोग।
सो उतसर्ग--सुमग कहो, जहँ सुभावसुखभोग॥१२६॥

(२५)

मनहरण।

जैसे घटपटादि विलोकिवेको भौनमाहिं, दीपविषैं तेल घालि बाती सुधरत है। तैसें ज्ञानजोतिसों सुरूपके निहारिवेको, आहार विहार जोग कायाकी करत है ॥ यहां सुखभोगकी न चाह परलोकहूके, सुखअभिलापसों अबंध ही रहत है। रागादिकपायनिकों त्यागे रहै आठों जाम, ऐसो मुनि होय सो भवोदधि तरत है ॥ १२७ ॥

(२६)

जाको चिनमूरत सुभावहीसों काहू काल, काहू परदर्वको न गहै सरधानसों। यही ताके अंतरमें अनसन शुद्ध तप, निहचै विराजै वृंद परमप्रमानसों ॥ जोग निरदोप अन्न भोजन करत तऊ, अनाहारी जानो ताको आतमीक ज्ञानसों। तैसे ही समितिजुत करत विहार ताहि, अविहारी मानो महामुनि परधान सो ॥ १२८ ॥

(२७)

मुनिमहाराजजूके केवल शरीरमात्र, एक परिग्रह यह ताको

न निषेध है। ताहूसों ममत्त छाँरि वीतरागभाव धारि, अजोग अहारादिको त्यागैं ज्यों अमेध है॥ नाना तपमाहिं ताहि नितही लगाये रहैं, आतमदाकतिको प्रकाशत अवेध है। सोई शिवसुंदरी स्वयंवरीविधानमाहिं, मुनि वर होय वृंद 'राधावेध' वेध है॥ १२९॥

(२८)

एक बार ही अहार निश्चै मुनिराज करैं, सोऊ पेट भरैं नाहिं ऊनोदरको गहै। जैसो कछू पावैं तैसो अंगीकार करैं वृंद, भिच्छाआचरनकरि ताहूको नियोग है॥ दिनहीमें स्वात रस आस न धरात मधु, मांस आदि सरवथा त्यागत अजोग है। देहनेह त्यागि शुद्ध संजमके साधनको, ऐसोई अहार शुद्ध साधुनिके जोग है॥ १३०॥

चौपाई।

एकै बार अहार बखानें। तासुहेत यह सुनो सयानें।
मुनिपदकी सहकारी काया। तासु सुथित यातैं दरसाया॥१३१॥
अरु जो बारबार मुनि खाई। तबहि प्रमाददशा बढ़ि जाई।
दरवभावहिंसा तब लागे। संजमशुद्ध ताहि तजि भागै॥१३२॥
सोऊ रागभाव तजि लेई। तब सो जोग अहार कहेई॥
तातैं वीतरागताधारी। ऐसे साधु गहैं अविकारी॥ १३३॥
जो भरि उदर करै मुनिभोजन। तो है शिथिल न सधै प्रयोजन॥
जोगमाहिं आलस उपजावै। हिंसा कारन सोउ कहावै॥१३४॥

तातैं ऊनोदर आहारो । रागरहित मुनिरीति विचारो ॥
सोई जोग अहार कहा है । संजमसाधन साध गहा है ॥१३५॥
जथालामको हेत विचारो । आपु कराय जु करै अहारो ॥
तब मनवांछित भोजन करई । इंद्रियराग अधिक उर धरई १३६
हिंसादोप लगै ध्रुव ताके । संजमभंग होहिं सब वाके ॥
तातैं जथालाभ आहारी । मुनिकहँ जोग जानु निरधारी १३७
भिच्छाकरि जो असन बखानै । तहां अरंभ दोप नहिं जानै ।
ताहूमें अनुराग न धरई । सोई जोग अहार उचरई ॥ १३८ ॥
दिनमें भलीभांति सब दरसत । दया पलै हिंसा नहिं परसत ।
रैनअसन सरवथा निपेधी । दिनमें जोग अहार अवेधी॥१३९॥
जो रसआस धरै मनमाहीं । तो अशुद्ध उर होय सदाही ॥
अंतरसंजमभाव सु घाते । तातैं रसइच्छा तजि खाते ॥१४०॥
मधमांस अरु शहदअपावन । इत्यादिक जे वस्तु घिनावन ॥
तिनको त्याग सरवथा होई । सोई परमपुनीत रसोई ॥१४१॥
सकलदोप तजि जो उपजै है । सोई जोग अहार कहै है ॥
वीतरागता तन सो धारी । गहै ताहि मुनिवृंद विचारी॥१४२॥

(२९)

द्रुमिला ।

जिन बालपने मुनि भार धरे, अथवा जिनको तन वृद्ध अती ।
अथवा तप उग्रतैं खेद जिन्हें, पुनि जो मुनिको कोउ रोग हती ॥

तब सो मुनि आतमशक्ति प्रमान, धरो चरिया निजजोग गती।
गुनमूल नहीं जिमि घात लहै, सो यही उतिमारग जानु जती॥

दोहा।

अतिकठोर आचरन जहँ, संजमरंग अभंग।
सोई मग उतसर्गजुत, शुद्धसुभाव-तरंग॥ १४४॥
ऐसी चरिया आचरैं, तेई मुनि मुनि मीत।
कोमलमगमें पग धरैं, देखि देहकी रीत॥ १४५॥
निज शुद्धातमतत्वकी, जिहि विधि जाने सिद्ध।
सोई चरिया आचरैं, अनेकांतके वृद्ध॥ १४६॥
अरु जे कोमल आचरन, आचरहीं अनगार।
तेऊ पुनि निज शकति लखि, करहिं कठिन आचार॥१४७॥
संजमभंग न होय जिमि, रहैं मूलगुन संग।
शुद्धातममें थिति बढ़ै, सोइ मग चलहि अभंग॥ १४८॥
कठिनक्रिया उतसर्गमग, कोमलमग अपवाद।
दोनों मग पग धारहीं, सुमुनि सहितमरजाद॥ १४९॥
जब जैसी तनकी दशा, देखहि मुनि निरगंथ।
तब तैसी चरिया चरैं, सहित मूलगुन पंथ॥ १५०॥
जो दोनों मगकेविषैं, होय विरोधप्रकास।
तो मुनिमारग नहिं चलै, समुझो बुद्धिविलास॥ १५१॥
ज्यों दोनों पगसों चलत, मारग कटत अमान।
त्यों दोनों मग पग धरत, मिलत वृंद शिवथान॥ १५२॥

(३०)

मनहरण ।

नानाभांति देशको सुभाव पहिचानि पुनि, शीतग्रीषमादि-रितु ताहूको परखिकै ॥ तथा कालजनित सु खेदहूको वेदि औ, उपासकी शकति वृंद ताहूको निरखिकै ॥ येई भेद भली भाँति जानकरि अहो मुनि, आहारविहार करो संजम सु रखिकै । जामें कर्मबंध अलप बँधै ताही विधिसेती, आचरन करो अनेकांत रस चखिकै ॥ १५३ ॥

चौपाई ।

जे उतसर्गमार्गके धारी । ते देशरु कालादि निहारी ॥
बाल वृद्ध खेदित रुजमाहीं । मुनि कोमल आचरनकराहीं॥१५४॥
जामें संजम भंग न होई । करमप्रबंध बँधै लघु सोई ॥
शकति लिये न मूलगुन घातै । यहु मग तिनको उचित सदातै॥
अरु जे अपवादिकमग ध्याता । सब विधि देशकालके ज्ञाता ॥
ते मुनि चारिहु दशाँमँझारी । होउ सुजोग अहारविहारी१५६
संजमरंग भंग जहँ नाहीं । ताही विधि आचरहु तहाँ ही ॥
शकति न लोपि न मूलहु घातो । अलपबंधकी क्रिया करातो ॥

दोहा ।

कोमल ही मगके विषै, जो इकंत बुधि धार ।
अनुदिन अनुरागी रहै, अरु यह करै विचार ॥ १५८ ॥

तब सो मुनि आतमशक्ति प्रमान, चरो चरिया निजजोग गती।
गुनमूल नहीं जिमि घात लहै, सो यही जतिमारग जानु जती ॥

दोहा।

अतिकठोर आचरन जहँ, संजमरंग अभंग।
सोई मग उतसर्गजुत, शुद्धसुभाव-तरंग ॥ १४४ ॥
ऐसी चरिया आचरैं, तेई मुनि पुनि मीत।
कोमलमगमें पग धरैं, देखि देहकी रीत ॥ १४५ ॥
निज शुद्धातमतत्त्वकी, जिहि विधि जानैं सिद्ध।
सोई चरिया आचरैं, अनेकांतके वृद्ध ॥ १४६ ॥
अरु जे कोमल आचरन, आचरहीं अनगार।
तेऊ पुनि निज शकति लखि, करहिं कठिन आचार ॥१४७॥
संजमभंग न होय जिमि, रहैं मूलगुन संग।
शुद्धातममें थिति बढ़ै, सोइ मग चलहि अभंग ॥ १४८॥
कठिनक्रिया उतसर्गमग, कोमलमग अपवाद।
दोनों मग पग धारहीं, सुमुनि सहितमरजाद ॥ १४९ ॥
जब जैसी तनकी दशा, देखहिं मुनि निरगंथ।
तब तैसी चरिया चरैं, सहित मूलगुन पंथ ॥ १५० ॥
जो दोनों मगकेविषै, होय विरोधप्रकास।
तो मुनिमारग नहिं चलै, समुझो बुद्धिविलास ॥ १५१ ॥
ज्यों दोनों पगसों चलत, मारग कटत अमान।
त्यों दोनों मग पग धरत, मिलत वृंद शिवथान ॥ १५२ ॥

अरु जस हठ मति राखियो, संजम रहै कि जाहि ।
हम इक दशा न छाँड़ि हैं, सो यह जिनमत नाहि ॥१६९॥
जैसो जिनमत है सोई, कहो तुम्हें समुझाय ।
जो मगमें पग धारि मुनि, पहुंचे शिवपुर जाय ॥ १७० ॥
कहुं अकेलो है यही, जो मारग अपवाद ।
कहुं अकेलो लसतु है, जो उतसर्ग अनाद ॥ १७१ ॥
कहुं उतसर्गसमेत है, यहु मारग अपवाद ।
कहुं अपवादसमेत है, मगउतसर्ग अवाद ॥ १७२ ॥
ज्यों संजमरच्छा बनत, त्यों ही करहिं मुनीश ।
देशकालवपु देखिकै, साधहिं शुद्ध सुईश ॥ १७३ ॥
पूरव जे मुनिवर भये, ते निजदशानिहार ।
दोनों मगकी भूमिमें, गमन किये सुविचार ॥ १७४ ॥
पीछे परमुतकिष्ट पद, ताहि ध्याय मुनिराय ।
क्रियाकांडतें रहित है, शुद्धातम लव लाय ॥ १७५ ॥
निज चैतन्यस्वरूप जो, है सामान्यविशेष ।
ताहीमें थिर होयके, भये शुद्ध सिद्धेश ॥ १७६ ॥
जो या विधिसों और मुनि, है सुरूपमें गुप्त ।
सो निजज्ञानानंद लहि, करै करमको लुप्त ॥ १७७ ॥
यह आचारसुविधि परम, पूरन भयौ अमंद ।
मुनिमगको सो जयति जय, वंदत वृंद जिनिंद ॥१७८॥

कोमलहू मग तो कह्यो, जिन सिद्धांतमँझार।
हम याही मग चलहिंगे, यामें कहा बिगार ॥ १५९ ॥
तो वह हठग्राही पुरुष, संजमविमुख सदीव।
शकति लोपि करनी करत, शिथिलाचारी जीव ॥ १६० ॥
ताको मुनिपद भंग है, अनेकांतच्युत सोय।
बँधै करम विशेष सो, शुद्ध सिद्ध किमि होय ॥ १६१॥
अरु जे कठिनाचार ही, हठकरि सदा करात।
कोमल मग पग धारतें, लघुता मानि लजात ॥ १६२ ॥
देशकालवपु देखिकै, करहिं नाहिं आचार।
अनेकांतसों विमुख सो, अपनो करत बिगार ॥ १६३ ॥
वह अतिश्रमतें देह तजि, उपजै सुरपुर जाय।
संजम अमृत वमन करि, करम विशेष बँधाय ॥ १६४ ॥
तातें करम बँधै अलप, सधै निजातम शुद्ध।
सोई मग पग धारिबो, संजमसहित विशुद्ध ॥ १६५ ॥
है सरवज्ञ जिनिंदको, अनेकांत मत मीत।
तातें दोनों पंथसों, है मुनि राखो रीत ॥ १६६ ॥
कहुँ कोमल कहुँ कठिन व्रत, कहुँ जुगजुत वरतंत।
शुद्धातम जिहि विधि सधै, वह मुनिमग सिद्धंत ॥१६७॥
संजमभंग बचायकै, देश काल वपु देखि।
कोमल कठिन क्रिया करो, करम न बँधै विशेखि ॥१६८॥

अरु अस हठ मति राखियो, संजम रहै कि जाहि ।
हम इक दशा न छाँड़ि हैं, सो यह जिनमत नाहि ॥१६९॥
जैसो जिनमत है सोई, कहो तुम्हैं समुझाय ।
जो मगमें पग धारि मुनि, पहुंचे शिवपुर जाय ॥ १७० ॥
कहूं अकेलो है यही, जो मारग अपवाद ।
कहूं अकेलो लसतु है, जो उतसर्ग अनाद ॥ १७१ ॥
कहुं उतसर्गसमेत है, यहु मारग अपवाद ।
कहुं अपवादसमेत है, मगउतसर्ग अवाद ॥ १७२ ॥
ज्यों संजमरच्छा वनत, त्यों ही करहिं मुनीश ।
देशकालवपु देखिकै, साधहिं शुद्ध सुईश ॥ १७३ ॥
पूरव जे मुनिवर भये, ते निजदशानिहार ।
दोनों मगकी भूमिमें, गमन किये सुविचार ॥ १७४ ॥
पीछे परमुतकिष्ट पद, ताहि ध्याय मुनिराय ।
क्रियाकांडतें रहित है, शुद्धातम लव लाय ॥ १७५ ॥
निज चैतन्यस्वरूप जो, है सामान्यविशेप ।
ताहीमें थिर होयके, भये शुद्ध सिद्धेश ॥ १७६ ॥
जो या विधिसों और मुनि, है सुरूपमें गुप्त ।
सो निजज्ञानानंद लहि, करै करमको लुप्त ॥ १७७ ॥
यह आचारसुविधि परम, पूरन भयौ अमंद ।
मुनिमगको सो जयति जय, वंदत वृंद जिनिंद ॥१७८॥

अधिकारान्तमंगल ।

मंगलदायक परमगुरु, श्रीसरवज्ञ जिनिंद ।
वृंदावन वंदन करत, करो सदा आनंद ॥ १७९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृत भाषाविषैं आचारविधिचारित्राधिकार नामा तीसरो अधिकार संपूरन भया ।

मिति पौष शुक्ल अष्टमी ८ मंगलवार सं० १९०५ पाव काशीमध्ये निजहस्ते लिखित वृन्दावनेन स्वपरोपकाराय । इहां ताईं सर्वगाथा २१२ अर भाषाके सर्व छंद ९०६ नवसै छह सो जयवंत होहु । श्रीरस्तु मंगलमस्तु ॥ ॥ ॥ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथाष्टम एकाग्ररूपमोक्षमार्गाधिकारः ।

मंगलाचरण । दोहा ।

सिद्धशिरोमनि सिद्धप्रद, वंदों सिद्ध महेश ।
सो इत नित मंगल करो, मेटो विघन कलेश ॥ १ ॥
सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, तीनों जत्र इकत्र ।
सोई शिवमग नियतनय, है शुद्धातम तत्र ॥ २ ॥
तथा जिन्हें यह लाभ हुव, ऐसे जे मुनिराज ।
तिनहूको शिवमग कहिय, धरमी धरम समाज ॥ ३ ॥
तासु परापतिके विषैं, जिनआगमको ज्ञानि ।
अवशि चाहिये तासतैं, अभ्यासो जिनवानि ॥ ४ ॥

(१)

मनहरण ।

सम्यकदरश ज्ञान चारितकी एकताई, येही शुद्ध तीरथ त्रिवेनी शिवमग है । ताकी एकताई मुनि पाई जब सुपर, पदारथको भलीभाँति जानत उमग है ॥ ऐसो भेदज्ञान जिन-आगमहीसेती होत, संशयविमोह ठग लागै नाहिं लग है । ताहीतैं जिनागम अभ्यास परधान कह्यौ, जाकी अनेकांत जोत होत जगमग है ॥ ५ ॥

सरवज्ञभाषित सिद्धांत विनु वस्तुनिको, जथारथ निहचै न होत सरवथा है । विना सर्वदर्वनिको भलीभाँति जानै कहो,

कैसे निज आतमाको जानै श्रुति मथा है । याहीतैं मुनिंदवृंद शब्दब्रह्मको अभ्यासि, आपरूप जानि तामें होहि थिर जथा है ॥ तातैं शिवमारगको मूल जिन आगम है, ताको पढ़ो सुनो गुनो यही सार कथा है ॥ ६ ॥

दोहा ।

जे जन जिनशासनविमुख, बहिरमुखी ते जीव ।
टाँवाडोल मिथ्यातवश, भटकत रहत सदीव ॥ ७ ॥
करता बनत त्रिलोकके, कबहुँ भोगता होहि ।
इष्टानिष्ट विभावजुत, सुथिर न कबहूँ सोहि ॥ ८ ॥
ज्यों समुद्रमें पवनतैं, चहुँदिशि उठत तरंग ।
त्यों आकुलतासों दुखित, लहैं न समरसरंग ॥ ९ ॥
जब अपनेको जानई, ज्ञानानंदसरूप ।
तब न कबहुँ परदरवको, करता बनै अनूप ॥ १० ॥
जो आतम निज ज्ञानकरि, लोकालोक समस्त ।
प्रगट पानकरि आपमें, सुथिर रहत परशस्त ॥ ११ ॥
ऐसो जो भगवान यह, चिदानंद निरद्वंद ।
सो जिनशासनतैं लखहिं, महामुनिनिके वृंद ॥ १२ ॥
तब ताको सरधान अरु, ज्ञान जथारथ धार ।
ताहीमें थिर होयके, पावैं पद अविकार ॥ १३ ॥
तातैं जिनआगम बड़ो, उपकारी पहिचान ।
ताको वृंद पढ़ो सुनो, यह उपदेश प्रधान ॥ १४ ॥

(२)

मत्तगयन्द ।

जो मुनिको नहिं आगमज्ञान, सो तो निज औ परको नहिं जानै ।
आपु तथा परको न लखै तब, क्यों करि कर्म कुलाचल मानै ॥
जासु उदै जगजालविषैं, चिरकाल विहाल भयो भरमानै ।
तातैं पढ़ो मुनि श्रीजिनआगम, तो सुखसों पहुंचो शिवथानै १५

कवित्त छन्द ।

जिनआगमसों दरव भाव नो,—करमनिकी हो है तहकीक ।
तब निजभेदज्ञानबलकरिकै, चूरै करम लहै शिव ठीक ॥
तिस आगमतैं विमुख होयकै, चहै जो शिवसुख लहों अधीक ।
सो अजान विनु तत्त्वज्ञान नित, पीटत मूढ सांपकी लीक१६॥
आगमज्ञानरहित नित जो मुनि, कायकलेश करै चिरकाल ।
ताको सुपरभेद नहिं सूझत, आगम तीजा नयन विशाल ॥
तब तहँ भेदज्ञान विनु कैसे, चलै शुद्ध शिवमारग चाल ।
सो विपरीत रीतकी धारक, गावत तान ताल विनु ख्याल १७

दोहा ।

ज्यों ज्यों मिथ्यामग चलै, त्यों त्यों बंधै सोय ।
ज्यों ज्यों भींजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ १८ ॥

(३)

सोरठा ।

आगमचक्षू साध, अक्षचक्ष जगजीव सब ।

१ तीसरा नेत्र । २ मुनियोंके नेत्र शास्त्र ही हैं । ३ संसारी जीवोंके नेत्र इन्द्रियां हैं ।

देव औधिदृग लाघ, सिद्ध सर्वचक्षु विमल ॥ १९ ॥
तातें यह उर जानि, अनेकांत वानी धुगा ।
सो आगम पहिचानि, पढ़ो सुनो भवि वृंद नित ॥ २० ॥
आगम ही हैं नैन, शिवसुखइच्छुक मुनिनिके ।
यों भाषी जिनवैन, सपरभेदविज्ञानप्रद ॥ २१ ॥

(४)

माधवी ।

जिनआगममें सब दर्वनिको, गुनपर्जविभेद भली विधि साधा ।
तिस आगमहीतें महामुनि देखके, जानें जथारथ अर्थ अगाधा ॥
तब भेदविज्ञान सुनैन प्रमान, निजातम वृंद लहै निरबाधा ।
अपने पदमें थिर होकरिके, अरिको हरिके सु वरै शिवराधा ॥ २२ ॥

जिनवानीमहिमा—मनहरण ।

एक एक दर्वमें अनंतनंत गुन पर्ज, नित्यानित्य लच्छनसों जुदे जुदे धर्म है । ताको जिनवानी ही अबाधरूप सिद्ध करै, हरै महा मोहतम अंतरको भर्म है ॥ ताहीकी सहायतें सु भेदज्ञाननैन खोलि, जानैं महामुनि शुद्ध आतमको मर्म है । सोई जगदंबको अलंब करै वृंदावन, त्यागिके विलंब सदा देत पर्म शर्म है ॥ २३ ॥

(५)

प्रथम जिनागम अभ्यासकरि यहां जाके, सम्यकदरश

१ देवोंके अवधिज्ञानरूपी नेत्र हैं । २ सिद्ध भगवान सर्वचक्षु अर्थात् सबको देखनेवाले हैं । ३ अवलम्बन—आसरा ।

सरधान नाहिं भयौ है। ताके दोऊ भांतिको न संजम विराजै कहूं, ऐसे जिनभापित सुवेद बरनयौ है ॥ संजम सुभावसों रहित जब भयौ तब, निहचै असंजमीकी दशा परिनयौ है। कैसे तब ताको मुनिपद सोहै वृंदावन, सांची गैल छांड़िके सो कांची गैल लयौ है ॥ २४ ॥

दोहा।

प्रथम जो आगमज्ञानतैं, रहित होय सरधान।
भेदज्ञान विनु किमि करै, सो निजपर पहिचान ॥ २५ ॥
तब कषायसंमिलित जो, मोहराग परिनाम।
ताके वश होकै धरै, विषयकषाय मुदाम ॥ २६ ॥
इंद्रीविपयनिकेविषैं, सो परिवरत कराय।
छहौं कायके जीवको, बाधक तब ठहराय ॥ २७ ॥
स्वेच्छाचारी जीव वह, ताको मुनिपद केम।
सर्वत्यागको है जहां, मुनिपदवीमें नेम ॥ २८ ॥
तैसे ही पुनि तासुके, निरविकलप समभाव।
परमातम निज ज्ञानघन, सोऊ नाहिं लखाव ॥ २९ ॥
अरु जे ज्ञेयपदार्थके, हैं समूह जगमाहिं।
तामें ज्ञान सुछंद तसु, वरतत सदा रहाहिं ॥ ३० ॥
याहीतैं निजरूपमें, होय नहीं एकत्र।
ज्ञान वृत्ते चंचल रहै, परसै सुथिर न तत्र ॥ ३१ ॥

१ रास्ता—मार्ग। २ प्रवृत्ति। ३ चारित्र।

आगमज्ञान सु पुव्व जहँ, होय नहीं सरधान।
तहां न संजम संभवै, यह अबाध परमान॥ ३२॥
जाके संजम होय नहिं, तब मुनिपद किमि होय।
शिवमग दूजो नाम जसु, देखो घटमें टोयै॥ ३३॥
तातैं आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान।
संजम भाव इकत्र जब, तबहिं मोखमग जान॥ ३४॥

माधवी।

जिन आगममें नित सात सुभंगकी, वृंद अभंग धुजा फहरावै।
जिसको लखिके मुनि भेदविज्ञानि, सुसंजमसंजुत मोच्छ सिधावै।
तिहिको तजिके जो सुछंदमती, अति खेद करै हठसों बहु धावै।
वह त्यागिके सीखसुधारसको, नित ओसके बूंदसों प्यास बुझावै॥ ३५॥

(६)

मनहरण।

आगम ही जानै कहो कहा सिद्धि होत जो न, आपापर-माहिं सरधान शुद्ध आय है। तथा सरधान हूं पदारथमें आयौ तो, असंजमदशासों कहो कैसे मोख पाय है॥ याहीतैं जिनागमतैं सुपरपदारथको, सत्यारथ जानि सरधान दिढ़ लाय है। फेरि शुद्ध संजमसुभावमें सुथिर होय, सोई चिदानंद वृंद, मोक्षको सिधाय है॥ ३६॥

---

१ खोजके।

तत्त्वनिमें रुचि परतीति जो न आई तो यौं, कहा सिद्ध होत कीन्हें आगम पठापठी। तथा परतीति प्रीति तत्त्वहूमें आई पै न, त्यागे रागदोष तौ तो होत है गठागठी ॥ तवै मोखसुख वृंद पाय है कदापि नाहिं, तातैं तीनों शुद्ध गहु छांडिके हठाहठी। जो तू इन तीन विन मोखसुख चाहै तौ तो, सूत न कपास करै कोरीसों लठालठी ॥ ३७ ॥

(७)

आपने सुरूपको न ज्ञान सरधान जाके, ऐसो जो अज्ञानी-ताकी दशा दरसावै है। जितने करमको सो विवहार धर्म-करि, शत वा सहस्र कोटि जन्ममें खिपावै है ॥ तिते कर्मको सु आपरूपमें सुलीन होय, ज्ञानी एक स्वासमात्र कालमें जलावै है। ऐसो परधान शुद्ध आतमीकज्ञान जानि, वृंदावन ताके हेत उद्यमी रहावै है ॥ ३८ ॥

जाके शुद्ध सहज सुरूपको न ज्ञान भयौ, और वह आग-मको अच्छर रटतु है। ताके अनुसार सो पदारथको जानै, सरधानै औ ममत्त लिये क्रियाको अटतु है ॥ तहां पुव्व खिरै नित नूतन करम बंधै, गोरखको धंधा नटवाजीसी नटतु है। आगेको वटत जात पाछे वछेरू[1] चवात, जैसे दृगहीन[2] नर जेवैरी[3] वटतु है ॥ ३९ ॥

जाने निजआतमाको जान्यो भेदज्ञानकरि, इतनो ही

---

१ बछड़ा। २ अंधा। ३ रस्सी भांजता है।

आगमको सार अंश चंगा है। ताकौ सरधान कीनों प्रीतिसौं प्रतीति भीनों, ताहीके विशेषमें अभंग रंग रंगा है॥ वाहीमें त्रिजोगको निरोधिके सुथिर होय, तबै सर्वकर्मनिको क्षपत प्रसंगा है। आयुहीमें ऐसे तीनों साधें वृंद सिद्धि होत, जैसे मन चंगा तो कठौतीमाहिं गंगा है॥ ४०॥

(८)

माधवी।

जिसके तनआदिविषैं ममता, वरतै परमानुहुके परमानी।
तिसको न मिलै शिव शुद्धदशा, किन हो सब आगमको वह ज्ञानी
अनुराग कलंक अलंकित तासु, चिदंक लसै हमने यह जानी।
जिमि लोकविषैं कहनावत है, यह ताँत बजी तब राग पिछानी॥

दोहा।

ज्यों करमाहिं विमल फटिक, देख परत सब शुद्ध।
त्यों मुनि आगमतैं लखहिं, सकल तत्त्व अविरुद्ध॥ ४२॥

तसु ज्ञाता चिद्रूपको, जानि करै सरधान।
अरु आचार हु करत सो, जतिपथरीतिप्रमान॥ ४३॥

ऐसे आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान।
संजम भाव इकत्रता, यह रतनत्रयवान॥ ४४॥

सो सूच्छिम हू राग जो, धरै तनादिकमाहिं।
तिते कलंकहितैं सु तौ, शिवपद पावै नाहिं॥ ४५॥

तातैं आगमज्ञानजुत, निरविकलप सु समाधि ।
वीतरागतासहित है, तब सब मिटै उपाधि ॥ ४६ ॥

सोरठा ।

जाके होय न ज्ञान, चिदानंद चिद्रूपको ।
सोई जीव अयान, ममता धरै तनादिमें ॥ ४७ ॥
सो न लहै निरवान, मोह गंसै तसु हंसपर ।
गुंभ्यौ गुप्त ही आन, भेदज्ञान विनु नहिं लखत ॥ ४८ ॥
तातैं हे बुधिवान, लेहु स्वरूप निहार निज ।
चिद्विलास अमलान, तामें थिर ह्वै सिद्ध हो ॥ ४९ ॥

(९)

सवैया—मात्रिक ।

जाके पंचसमिति सित सोमत, तीन गुपत उर लसत उदार ।
पंचिंद्रिनिको जो संवर करि, जीतै सकल कपायविकार ॥
सम्यकदर्श ज्ञान संपूरन, जाके हिये वृंद दुतिधार ।
शुद्ध संजमी ताहि कहैं जिन, सो मुनि वरै विमल शिवनार५०

(१०)

छप्पय ।

जो जानै समतुल्य, शक्र अरु बंधुवर्ग निजु ।
सुखदुखको सम जानि, गहै समता सुभाव हि जु ॥

---

१ गांसी—फांसी । २ आत्मापर । ३ सुंभा है ।

थुति निंदा पुनि लोह कनक, दोनों सम जानै ।
जीवन मरन समान मानि, आकुलदल मानै ॥
सोई मुनि वृंद प्रधान है, समतालच्छनको धरै ।
निज साम्यभावमें होय थिर, शुद्ध सिद्ध शिव तिय वरै ॥ ५१ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

जो जन सम्यकदर्शन ज्ञान, चरित्र विशुद्ध सुभाविकमाहीं ।
एकहि वार भली विधिसों, करि उद्यम वर्चतु है तिहि ठाहीं ॥
सो निज आतममें लवलीन, इकाग्रदशामहँ प्रापति आहीं ।
है तिनको परिपूरनरूप, मुनीश्वरको पद संशय नाहीं ॥ ५२ ॥

दोहा ।

ज्ञेयरु ज्ञायक तत्त्वको, जहां शुद्ध सरधान ।
सोई सम्यकदरश है, दूषनरहित प्रमान ॥ ५३ ॥
ताहि जथावत जानिवो, सो है सम्यकज्ञान ।
दरशज्ञानमें सुथिरता, सो चारित्र प्रधान ॥ ५४ ॥
येई तीनों भाव हैं, भावक आतम तास ।
आपहि आपु सुभावको, भावै थिर सुखरास ॥ ५५ ॥
इन भावनिके बढ़नकी, जहँ लगु हद्द प्रमान ।
तहँ लगु बढ़हिं परस्पर, सुगुनसहित गुनवान ॥ ५६ ॥
ये तिहुँ भाव सु अंग हैं, अंगी आतम तास ।
अंगी अंग सु एकता, सदा सधत सुखरास ॥ ५७ ॥

इमि एकता सुभाव जो, प्रनयौ आतम आप ।
सोई संजम भाव है, आप रूपमें व्याप ॥ ५८ ॥
सो जद्दिप तिहुँ भेदकरि, है अनेक परकार ।
तद्दिप एक स्वरूप है, निरविकल्प नयद्वार ॥ ५९ ॥
जैसे एकपना त्रिविधि, मधुर आमलौ तीत ।
सुरस स्वाद तब मिलत जब, निरविकलप रसप्रीत ॥६०॥
वैसे सो संजम जदपि, रतनत्रयतैं भेद ।
तदपि सुभाविक एकरस, एकै गहै अखेद ॥ ६१ ॥
परदरवनिसों भिन्न नित, प्रगट एक निजरूप ।
ताहि सु मुनिपद कहद हुआ, शिवमग कहो अनूप ॥६२॥
सो शिवमगको तीन विधि, परजैनयके द्वार ।
भाषतु हैं विवहारकरि, जाको भेद अपार ॥ ६३ ॥
अरु एकतासरूप जो, शिवमग वरनन कीन ।
दरवार्थिकनय द्वारतैं, सो निहचै रसलीन ॥ ६४ ॥
जेते भेदविकल्प हैं, सो सब हैं विवहार ।
अरु जो एक अभेदरस, सो निहचै निरधार ॥ ६५ ॥
ऐसो शिवमग जानिके, निज आतमहितहेत ।
हे भवि वृंद करो गहन, जो अबाध सुख देत ॥ ६६ ॥

(१२)

छप्पय ।

जिस मुनिके नहिं, सुपरभेदविज्ञान विराजै ।
अज्ञानी तसु नाम, कही जिनवर महाराजै ॥

सो परदर्वहिं पाय, राग विद्वेष मोह धरि।
विविध करमको बंध, करत अपनो विकारकरि॥
निज चिदानंदके ज्ञान विनु, शुद्ध सिद्धपद नहिं ठरत।
सो पाटकीटके न्यायवत, नित नूतन बंधन बटत॥ ६७॥

(१३)

सवैया-मात्रिक।

जो मुनि आतमज्ञान वृंद जुत, सो पर दरवनिके जे धंम।
तिनमें मोहित होत न कबहूँ, करत न राग न दोष अरंभ॥
सो निजरूपमाहिं निहचै थिर, है इकाम संजमजुत संम।
सोई विविध करम छय करिके, देहि मोखमग सनमुख थंम६८

दोहा।

इहि प्रकार निरधार करि, भाँवे शिवमग पर्म।
शुद्धपयोगमयी सुमुनि, गहै लहैं शिवशर्म॥ ६९॥

कवित्त-मात्रिक।

जाके हिये मोहमिथ्यामत, है भवि पूर रह्यौ भरपूर।
कैसहुके न तजै हठ सो सठ, ज्यों महि गहै गोह पग भूर॥
जो कहुं सत्य सुनै तउ वरमें, धरै न सरघा अतिहि करूर।
ताको यह उपदेश अफल जिमि, कूकरके मुखमाहिं कपूर ७०
तातैं अब इस कथन मथनको, सुनो सार भवि धरि उपयोग।
सम्यक दरशन ज्ञानचरितमें, सुथिर होहु जुत शुद्धपयोग॥

यही सुमुनिपद वृंद अनूपम, यातैं कटैं करमके रोग ।
ताकौं गहो मिल्यौ यह औसर, जैसे नदी नाव संजोग ७१॥

अधिकारान्तमंगल—दोहा

पूरन भयौ सुखद परम, शिवमग शुद्धसरूप ।
वंदौं श्रीजिनदेवको, जो लहि कही अनूप ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृतभाषाविषै एकाग्ररूप मोक्षमार्गका स्वरूप कथन ऐसा आठवाँ अधिकार पूरा भया । पौष शुद्ध पूरनमासी सोमवार संवत् १९०५ ।

इहां ताईं सर्व गाथा २४५ अरु भाषाके छंद नवसै अठहत्तर ९७८ । सो जयवंत होहु । मंगलमस्तु । श्रीरस्तु ।

ओं नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ नवमः शुभोपयोगरूपमुनिपदाधिकारः ।

मंगलाचरण—दोहा ।

श्रीजिनवानी सुगुरु पद, वंदों शीस नवाय ।
सकल विघन जातें मिटें, भविक वृंद सुखदाय ॥ १ ॥
अब वरनत शुभभावजुत, मुनि पदवीकी रीति ।
श्रुति मथि गुरु संछेपतें, करो सुमति परतीति ॥ २ ॥

(१)

दो विधिके मुनि होहिं इमि, कही जिनागममाहिं ।
एक शुद्धउपयोगजुत, इक शुभमगमें जाहिं ॥ ३ ॥
जे सुविशुद्धुपयोगजुत, सदा निरास्रव तेह ।
बाकी आस्रवसहित हैं, शुभ उपयोगी जेह ॥ ४ ॥

दुमिला ।

जिनमारगमें मुनि दोय प्रकार, दिगंबररूप विराजत है ।
इक शुद्धपयोग विशुद्ध धरें, जिनतें करमास्रव भाजत है ॥
दुतिये शुभ भाव दशा सु धरें, तिनके करमास्रव छाजत है ।
यह भाविक भेद सनातनतें, जिनआगम या विधि गाजत है ॥
सबही परदर्वनिसों ममता, तजिके मुनिको मत धीर धरें ।
चित चंचल अंशकषाय उदै, नहिं आतम शुद्ध प्रकाश करें ॥
मुनि शुद्धपयोगिनिके हिगमें, पुनि जे वरतें अनुराग भरें ।
कहिये अब ते मुनि हैं कि नहीं, इमि पूछत शिष्य विनीत वरें॥

दोहा।

याको उत्तर प्रथमही, अंथारभतमाहिं।
कहि आये हम हैं भविक, पुनि समुझो इहि ठाहिं ॥ ७॥

माधवी।

निज धर्मसरूप जबै मनवै, यह आतम आप अध्यातम ध्याता।
तब शुद्धपयोगदशा गहिके, सो लहै निरवान सुखामृत ख्याता ॥
अरु होत जहां शुभरूपपयोग, तहां सुरगादि विभौ मिलि जाता।
यह आपुहि है अपने परिनामनिको, फल भोगनिहार विधाता ॥

दोहा।

शुभपयोगसों और पुनि, शुद्धातम निजधर्म।
तिनसों एक अरथविषैं, है समवाय सुपर्म ॥ ९ ॥
एकातमहीके विषैं, दोनों भाव रहाहिं।
तातैं दोनों भावको, धरम कही श्रुतिमाहिं ॥ १० ॥
याही नयतैं हे भविक, शुभ उपयोगी साध।
तेऊ मुनि हैं पै तिन्हैं, आस्रव कर्म उपाध ॥ ११ ॥
शुद्धपयोगीके नहीं, करमास्रवको लेश।
ते सब कर्म विनाशिकै, होहिं शुद्ध सिद्धेश ॥ १२ ॥

---

१ यह पहले अध्यायकी ग्यारहवीं गाथाका अनुवाद है, जो कि- पहले अध्याय में छप चुका है (पृष्ठ २० में) अन्तर इतना है कि, वहां छन्द मत्तगयन्द था, यहां प्रत्येक चरणमें दो दो लघु (निज, तब, अरु, यह) डालकर माधवी बना दिया है।

(२)

रूपछंदैया।

जो मुनिके उर अंतरमाहीं, यह परनति वरतै सुनि भव्वै[1]।
अरहंतादि पंचगुरुपदमें, भगत उमंग रंग रसतव्व॥
तथा परम आगम उपदेशक, तिनसों वच्छलैता[2] विनु गव्वै[3]।
सो शुभरूप कहावत चरियाँ[4], यों वरनी जिनगनधर पव्व॥

छप्पय।

जो परिगह परिहार, सुमुनिमुद्राको धारै।
पै कषायके अंश, तासुके उदय लगारै॥
तातैं शुद्धस्वरूपमाहिं, थिरता नहिं पावै।
तब पन शुद्धस्वरूप, सुगुरुसों प्रीति बढ़ावै।
अरु जे शुद्धातमधरमके, उपदेशक तिनमें हरखि।
वर भक्ति सु सेवा प्रीतिजुत, वरतत है मुनिमग परखि॥१४॥

सोरठा।

तिस मुनिके यह जानु, इतनहिं राग सु अंशकरि।
पर दरवनिमें मानु, है प्रवृत्ति निहचैपनै॥ १५॥
सो शुद्धातमरूप, ताकी थिरतासों चलित।
यों भाषी जिनभूप, वह शुभभावचरित्रधर॥ १६॥
पंच परमगुरुमाहिं, भगत सु सेवा प्रीति जहँ।
सो शुभमग कहलाहिं, शुभ उपयोगिनिके चिह्न॥ १७॥

१ भव्य। २ वत्सलता। ३ गर्व-अभिमान। ४ चर्या-वृत्ति।

(३)

मनहरण ।

महामुनिराजनिकी वानीसेती थुति करै, कायासेती नुति करै महामोद भरी है। आवत विलोकि उठि खड़े होहिं विनै धारि, चालै तब पीछे चलै शिष्यभाव धरी है॥ तिनके शरीरमाहिं खेद काहू भाँति देखै, ताको दूर करै जथाजोग विसतरी है। सराग चरित्रकी अवस्थामाहिं मुनिनिको, येती क्रिया करिवो निषेध नाहिं करी है॥ १८॥

दोहा।

शुभ उपयोगी साधुको, ऐसो वरतन जोग।
शुद्धपयोगी सुमुनि प्रति, जहँ आतमनिधिभोग॥ १९॥
जो श्रीमहामुनीशके, कहुँ उपसर्गवशाय।
खेद होय तो सुथिर-हित, वैयावृत्ति कराय॥ २०॥
जातैं खेद मिटै बहुरि, सुथिर होय परिनाम।
तब शुद्धातम तत्त्वको, ध्यावैं मुनि अभिराम॥ २१॥
शुद्धातमके लाभतैं, रहित जु मिथ्यातीय।
ताकी सेवादिक सकल, यहां निषेध करीय॥ २२॥

(४)

मत्तगयन्द।

सम्यकदर्शन ज्ञान दशा, उपदेश करैं भविको भवतारी।
शिष्य गहैं पुनि पोषहिं ताहि, भली विधिसों चरमामृतधारी॥

श्रीजिनदेवके पूजनको, उपदेश करैं महिमा विसतारी ।
है यह रीति सरागदशामहँ, वृंद मुनिंदनिको हितकारी॥२३॥

दोहा ।

शुद्धुपयोगीके परम, वीतरागता भाव ।
तातैं तिनके यह क्रिया, होत नाहिं दरसाव ॥ २४ ॥

(५)

मत्तगयद ।

जामहँ जीव विरोध लहै नहिं, ताविधिसों नितही विधि ज्ञाता ।
चारि प्रकारके संघ मुनीशको, ताको करै उपकार विख्याता ॥
आपने संजमको रखिके, निहचै सबके सुखदायक साता ।
या विधि जो बरतै मुनि सो, परधान सरागदशामहँ आता२५

दोहा ।

श्रावक अरु पुनि श्राविका, मुनि अरजिका प्रमान ।
येई चारों संघके, स्वामी सुमुनि सयान ॥ २६ ॥
शुद्धातमअनुभूतिके, ये साधक चहुसंग ।
तातैं नित रच्छा करहिं, इनकी सुमुनि उमंग ॥ २७ ॥
वैयावृत्तादिक क्रिया, जा विधि बनै उदार ।
ताही विधिसों करत हैं; ते सराग अनगार ॥ २८ ॥
हिंसा दोष बचायके, अपनो संजम राख ।
संघानुग्रहमें रहैं, सो प्रधान मुनि भाख ॥ २९ ॥

(६)

कवित्त-मात्रिक ।

जो मुनि और मुनिनिके कारन, वैयावरत करनके हेत ।
छहों कायको बाधक हो करि, उद्यमवान होय वरतेत ॥
तो सो मुनि न होय यह जानो, है वह श्रावक सुविधि समेत ।
तातें वह अरंसजुत मारग, श्रावकधरममाहिं छवि देत ॥२०॥

कुंडलिया ।

तातैं जे केई सुमुनि, गहैं सराग चरित्त ।
ते परमुनिको खेद लखि, ठानौ वैयावृत्त ॥
ठानौ वैयावृत्त तहां, निज संजम राखो ।
परकी करो सहाय; जथा जिनश्रुतिमें भाखो ॥
षट्काया सविरोध, क्रिया गृहमध्य करातैं ।
मुनिको सुपद बचाय, उचित परहितकृत तातैं ॥ ३१ ॥

(७)

माधवी ।

जिनशासनके अनुसार धरें व्रत, जे मुनिराय तथा गृहवासी ।
तिनको उपकार करो सु दया धरि,त्यागि हिये फलकी अभिलासी॥
इहि भाँति किये जदि जो तुमको, शुभकर्म बँधे कछु तो नहिं हांसी
यह रीति सरागचरित्रविषैं,है सनातन वृंद जिनिंद प्रकासी ॥३२॥

(८)

मनहरण ।

कहूँ काहू मुनिको जो रोगसों विथित देखो, तथा भूख

प्यासकरि देखो जो दुचित है। तथा काहू भाँतिकी परी-षहके जोगसेती, कायमें कलेश काहू मुनिके कुंचित है॥ तहां तुम आपनी शकतिके प्रमान मुनि, ताकी वैयावृत्ति आदि करो जो उचित है। जातें यह साध निरुपाध होय वृंदावन, सहजसमाधमें अराधै जो सुचित है॥ ३३॥

(९)

रोगी मुनि अथवा अचारज सुपूज गुरु, तथा बाल वृद्ध मुनि ऐसे भेद वरनी। तिनकी सहाय सेवा आदि हेत मुनि-निकों, लौकिक जनहूसों सुसंभाषन करनी॥ जामें तिन साधनके खेदको विछेद होय, ऐसे शुभ भावनिसों वानीको उचरनी। सराग आनंदमें अनिंद वृंद विधि यह, सुपरोप-कारी बुधि भवोदधितरनी॥ ३४॥

(१०)

यह जो प्रशस्त रागरूप आचरन कहो, वैयावृत्त आदि सो तो बड़ोई धरम है। मुनिमंडलीमें यह गौनरूप राजै जातें, तहां रागभाव मंद रहत नरम है॥ श्रावक पुनीतके बड़ोई धरमानुराग, तातैं तहां उतकिष्ट मुख्यता परग है। ताहीकरि परंपरा पावै सो परम सुख, निहचै बखानी श्रुति यामें ना भरम है॥ ३५॥

---

१ क्वचित्–कहीं। २ चित्स्वरूप आत्मा।

(११)

कवित्त।

यह प्रशस्त जो रागभाव सो, वस्तु विशेष जो पात्रविधान।
तिनको जोग पायकरि सोई, फल विपरीत फलत पहिचान॥
ज्यों कृषि समै विविध धरनी तहँ, अविधि धरनिमहँ बीज बुवान।
सो विपरीत फलत फल निहचै, कारन सम कारज परमान३६

(१२)

मनहरण।

छदमस्थ बुद्धीने जो आपनी उकतिहीसों, देव गुरु धर्मादि पदारथ थापे है। व्रत नेम ध्यानाध्येन दानादि बखाने तहां, तामें जो सुरत होय प्रीति करि व्यापे है॥ तासों मोख-पद तो सरवथा न पावै पै, उपावै पुन्यरूप भावबीज यों अलापे है। ताको फल भोगै देव मानुष शरीर धरि, फेरि सो जगतहीमें तपै तीनों तापे है॥ ३७॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

वीतराग सरवज्ञदेवकरि, जो भाषित है वस्तुविधान।
देवधर्म गुरु ग्रंथ पदारथ, तिनमें जो प्रतीति रुचिवान॥
सो शुभरागभाव वृंदावन, निश्चयसों कीजो सरधान।
ताको फल साच्छात पुन्य है, परंपरा दे है शिवथान॥३८॥

दोहा।

तातैं गहि भवि वृंद अब, अनेकांतको सर्न।
प [illegible] र करि, शुभपयोग आचर्न॥ ३९॥

ताको फल साच्छात लहि, पुन्यरूप सुखवृंद ।
परंपरासों मोखपद, पैहै आनँदकंद ॥ ४० ॥

(१३)

मनहरण ।

शुद्ध परमातम पदारथको जानै नाहिं, ऐसे जे अज्ञानी जीव जगमें बखाने हैं । जाके उर विषय कषाय भूरि भरि रह्यौ, ऐसे जगजंतको जे गुरुकरि माने हैं ॥ तिन्हें भक्ति भावसेती सेवें अति प्रीति धारि, आहारादि दान दै हरष हिय आने हैं । ताको फल भोगैं सो कुदेव कुमनुष होय, रुलैं जग जालमें सो मूरख अयाने हैं ॥ ४१ ॥

आतमीक ज्ञान वीतराग भाव जाके नाहिं, तथा याकी कथा हू न रुचै रंच मरी है । मिथ्यामत माते नित विषयक-षाय राते, ऐसेको जो गुरू मानि सेवै प्रीति धरी है ॥ आहा-रादि दान दै प्रधान पद माने निज, जाने मूढ़ सही मोहि यही निसतरी है । दोनों कर्म भार भरे कैसे भवसिंधु तरैं, पाथरकी नाव कहूं पानीमाहिं तरी है ॥ ४२ ॥

(१४)

इंद्रिनिके भोगभाव विषय कहावैं और, क्रोधादिक भाव ते कषायरूप वरनी । इन्हें सर्व सिद्धांतमें पाप ही मथन करी, तथा इन्हें धारै सोऊ पापी उर धरनी ॥ ऐसे पाप भारकरि भरे जे पुरुष ते सु,–भक्तनिको कैसे निसतारैं निरवरनी ।

आपु न तरेंगे औ न तारेंगे सु भक्तनिको, दोनों पाप भार भरे भोगैं पाप करनी ॥ ४३ ॥

दोहा।

विषय कषायी जीवको, गुरुकरि सेयें मीत।
उत्तम फल उपजै नहीं, यह दिढ़ करु परतीत ॥ ४४ ॥

(१५)

मत्तगयंद।

जो सब पाप क्रिया तजिकै, सब धर्मविषै समता विसतारैं।
ज्ञान गुनादि सबै गुनको, जो अराधत साधत हैं श्रुतिद्वारैं ॥
होंहिं सोई शिवमारगके, वर सेवनहार मुनीश उदारैं।
आपु तरैं भविको भव तारहिं, पावन पूज्य त्रिलोकमझारैं ॥४५॥

(१६)

मनहरण।

अशुभोपयोग जो विमोह रागदोष भाव, तासतैं रहित होहि मुनी निरगंथ है। शुद्ध उपयोगकी दशामें केई रमैं केई, शुभ उपयोगी मथैं विवहार मंथ है ॥ तेई भव्य जीवनिको तारैं हैं भवोदधितैं, आपु शिवरूप पुन्यरूप पूज पंथ है। तिनहीकी भक्तितैं भविक शुभथान लहैं, ऐसे चित चेत वृंद भाषी जैनग्रंथ है ॥ ४६ ॥

(१७)

माधवी।

तिहि कारनतैं गुन उत्तमभाजन, श्रीमुनिको जब आवत देखो।
तब ही [illegible] खड़े रहिकै, पद वंदि पदांबुजकी दिशि पेखो॥

गुनवृद्ध विशेषनिकी इहि भाँति, सदीव करो विनयादि विशेखो ।
उपदेश जिनेशको जान यही, विधिसों वरतो चहुसंघ सरेखो ४७

(१८)

मनहरण ।

आवत विलोकि खड़े होय सनमुख जाय, आदरसों आइये आइये ऐसे कहिकै । अंगीकार करिकै सु सेवा कीजे वृंदावन, और अन्न पानादिसों पोखिये उमहिकै ॥ बहुरि गुननिकी प्रशंसा कीजे विनयसों, हाथ जोरें रहिये प्रनाम कीजे ठहिकै । मुनिमहाराज वा गुनाधिक पुरुषनिसों, याही भाँति कीजे श्रुतिसीखरीति गहिकै ॥ ४८ ॥

(१९)

छप्पय ।

जे परमागम अर्थमाहिं, परवीन महामुनि ।
अरु संजम तप ज्ञान आदि, परिपूरित हैं पुनि ॥
तिनहिं आवतौ देखि, तबहि मुनिहूकहँ चहिये ।
खड़े होय सनमुख सुजाय, आदर निरवहिये ॥
सेवा विधि अरु परिनाम विधि, दोनों करिवो जोग है ।
है उत्तम मुनिमगरीति यह, जहँ सुभावसुखभोग है ॥ ४९ ॥

दोहा ।

दरवित जे मुनि भेष धरि, ते हैं श्रमनाभास ।
तिनकी विनयादिक क्रिया, जोग नहीं है भास ॥ ५० ॥

तो तिनके उरमाहिं मिथ्यात,–पयोग लसै लखि लेहु सयानै।
है यह चारितभ्रष्ट मुनी, अनरीति चलै जतिरीति न जानै ५४

दोहा।

विनय भगत तो उचित है, बड़े गुनिनिकी वृंद।
हीन गुनिनिको वंदतैं, चारित होत निकंद ॥ ५५ ॥

(२४)

कवित्त–मात्रिक।

जद्दपि जिनसिद्धांत सूत्रकरि, जानत है निहचै सब वस्त।
अरु कषाय उपशमकरि जो मुनि, करत तपस्या अधिक प्रशस्त॥
जो न तजै लौकिक जनसंगति, तो न होय वह मुनि परशस्त।
संगरंगतैं भंग होय व्रत, यातैं तजिय कुसंगत रस्त ॥ ५६ ॥

दोहा।

जैसे अगिनि मिलापतैं, शीतल जल है गर्म।
तैसे पाय कुसंगको, होय मलिन शुभ कर्म ॥ ५७ ॥
तातैं तजो कुसंग मुनि, जो चाहो कुशलात।
बसो सुसंगत सुमुनिके, जुतविवेक दिनरात ॥ ५८ ॥
कही कुसंगतकी कथा, बहुत भाँति श्रुतिमाहिं।
विषम गरल[1] सम त्यागि तिहि, चलो सुसंगति छाहिं ॥५९॥

(२५)

दुमिला।

निरग्रंथ महाव्रतधारक हो करि, जो इहि भाँति करै करनी।
वरतै इस लौकिक रीतिविषैं, करै वैद्यक[2] जोतिक[3] मंतरनी[4]॥

1 विष। 2 वैद्यक। 3 ज्योतिष। 4 मन्त्रविद्या।

वह लौकिक नाम मुनी कहिये, परिग्रष्ट दशा तिसकी वरनी
तपसंजमसंजुत होय तऊ, न तरै भवसागर दुस्तरनी ॥ ६० ॥

दोहा।

लौकिकजनमन मोदके, जेते विविध विधान।
तिनमें वरतै लगनजुत, सो लौकिक मुनि जान ॥ ६१ ॥
ताकी संगतिको तजहिं, उत्तम मुनि परवीन।
जातैं संगति दोषतैं, सज्जन होय मलीन ॥ ६२ ॥

(२६)

छप्पय।

तिस कारन मुनिको कुसंग, तजिकै यह चहियत।
निज गुनके समतूल होहि, कै अधिक सु महियत (?) ॥
तिन मुनिकी सतसंगमाहिं, तुम बसौ निरंतर।
जो सब दुखतैं मुक्ति दशा, चाहो अभिअंतर ॥
समगुन मुनिकी सतसंगतैं, होय सुगुनरच्छा परम।
गुनवृद्ध मुनिनिकी संगतैं, बढ़ै सुगुन आतमधरम ॥ ६३ ॥

दोहा।

जलमें शीतल गुन निरखि, ताकी रच्छाहेत।
शीत भौनके कौनमें, राखहिं सुबुध सचेत ॥ ६४ ॥
यह समान गुनकी सुखद, संगति भाषी मीत।
अब भाषों गुनअधिकके, सतसंगतिकी रीत ॥ ६५ ॥
जैसे वरफ कपूर पुनि, शीत आदि संजोग।
होत नीर गुन शीत अति, यह गुन अधिक नियोग ॥ ६६ ॥

काव्य-(मात्रा २४)

तातैं जे मुनि महामोख,-सुखके अभिलाखी ।
तिनको यह उपदेश, सुखद है श्रुतिकी साखी ॥
तजि कुसंग सरवथा, सुपथमें चलो बुधातम ।
बसो सदा सतसंगमाहिं, साधो शुद्धातम ॥ ६७ ॥

मनहरण ।

प्रथम दशामें शुभ उपयोगसेती उतपन्न जो प्रवृत्ति वृंद ताको अंगीकार है । पीछेसों सु संजमकी उतकिष्टताई-करि, परम दशाको अवधारो बुद्धिधार है ॥ पाछें सर्व वस्तुकी प्रकाशिनी केवलज्ञाना-नन्दमई शासती अवस्था जो अपार है । ताको सरवथा पाय अपने अतिंद्री सुख, तामें लीन होहु यह पूरो अधिकार है ॥ ६८ ॥

माधवी ।

तिस कारनतैं समुझाय कहों, मुनि वृंदनिको सतसंगति कीजे।
अपने गुनके जे समान तथा, परधान मुनीनिकी संग गहीजे ॥
जदि चाहत हो सब दुःखनिको खय, तौ यह सीख सु सीस धरीजे।
नित वास करो सतसंगतिमाहिं, कुसंगतिको सु जलंजलि दीजे ६९

दोहा ।

ज्यों जुग मुकता सम मिलत, कीमत होत महान ।
त्यों सम सतसंगत मिलत, बढ़त सुगुन अमलान ॥७०॥

ज्यों पारस संजोगतें, लोह कनक ह्वै जाय।
गरलै अमियै सम गुनधरत, उत्तम संगति पाय ॥ ७१ ॥
जैसे लोहा काठ सँग, पहुँचै सागर पार।
तैसे अधिक गुनीनि सँग, गुन लहि तजहि विकार ॥७२॥
ज्यों मलयागिरिके विषैं, बावन चंदन जान।
परसि पौनै तसु और तरु, चंदन होंहिं महान ॥ ७३ ॥
त्यों सतसंगति जोगतैं, मिटै सकल अपराध।
सुगुन पाय शिवमग चलै, पावै पद निरुपाध ॥ ७४ ॥
देख कुसंगति पायके, होंहिं सुजन सविकार।
अगिनि—जोग जिमि जल गरम, चंदन होत अँगार॥७५॥
छीरै जगत जन पोषिकै, करत बीजैदुति गात।
सोई अहिमुख परत ही, हालाहल ह्वै जात ॥ ७६ ॥
तातैं बहुत कहौं कहा, जे ज्ञाता परवीन।
ते थोरेहीमें लखहिं, संग रंगकी बीन ॥ ७७ ॥
दुर्जनको उपदेश यह, निष्फल ऐसें जात।
पाथर परको मारिबो, चोखो तीर नसात ॥ ७८ ॥
तातैं निजहित हेतको, गहन करहिं बुधिधार।
हंस पान पैयको करत, जिमि तजि वारिविकार ॥ ७९ ॥
यों मत चितमें जानियौ, मुनिकहँ यह उपदेश।
श्रावकको तो नहिं कह्यो, मूल ग्रंथमें लेश ॥ ८० ॥

१ विष। २ अमृत। ३ पवन—हवा। ४ दूध। ५ बिजली जैसी द्युति। ६ दूध।

मुनिके मिष सबको कह्यो, न्याय रीति निरवाह ।
जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह ॥८१॥
ऐसो जानि हिये सदा, जिनआगम अनुकूल ।
करो आचरन हे भविक, करम जलैं ज्यों तूल ॥ ८२ ॥
परम पुन्यके उदयतैं, मिल्यौ सुघाट सुजोग ।
अब न चूक भवि वृंद यह, नदी नाव संजोग ॥ ८३ ॥
सकल ग्रंथको मंथके, पंथ कह्यो यह सार ।
कुंदकुंद गुरुदेव सो, मोहि करो भव पार ॥ ८४ ॥
जयवंतो वरतौ सदा, श्रीसरवज्ञ उदार ।
जिन भाष्यो यह मुकतिमग, श्रीमत प्रवचनसार ॥ ८५ ॥
यह मुनि शुभ आचारको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंतो होहु जग, रविशशिकी उनिहार ॥ ८६ ॥
मंगलकारी जगत गुरु, शुद्ध सिद्ध अरहंत ।
सो याही मगतैं किये, सकल करमको अंत ॥ ८७ ॥
तातैं परम पुनीत यह, जिनशासन सुखकंद ।
वृंदावन सेवत सदा, दायक सहजानंद ॥ ८८ ॥

अथ पञ्चरत्नतत्त्वस्वरूपो लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

पंच परमपद वंदिकै, पंचरतनको रूप ।
गाथा अरथ विलोकिकै, लिखौं सुखद रसकूप ॥ ८९ ॥
मानो इस सिद्धांतके, एई पांचों रत्न ।
मुकुटसरूप विराजहीं, उर धरिये जुत जत्न ॥ ९० ॥
अनेकांत भगवंतमत, ताको जुत संक्षेप ।
दरसावत हैं रतन यह, नय प्रमान निक्षेप ॥ ९१ ॥
और यही संसार थिति, मोक्षस्थिति विरतंत ।
प्रगट करत हैं तासुतैं, होहु सदा जयवंत ॥ ९२ ॥
पंचरतनको नाम अब, सुनो भविक अभिराम ।
उर सरधा दिढ़ धारिकै, वेगि लहो शिवधाम ॥ ९३ ॥

छप्पय ।

प्रथम तत्त्व संसार, मोक्ष दूजो पुनि जानो ।
मोक्षतत्त्वसाधक तथैव, साधन उर आनो ॥
सर्वमनोरथ सुखद,—थान शिष्यनिको वरनी ।
शास्त्रश्रवणको लाभ, तुरित भवसागर तरनी ॥
यह पंचरतन इस ग्रंथमें, सकल ग्रंथ मथिकै धरे ।
वृंदावन जो सरधा करै, सो भव तरि शिवतिय वरे ॥९४॥

(१)

छप्पय।

जो मुनिमुद्रा धारि, अर्थ अजथारथ पकरी।
जथा गोह गहि भूमि, तथा हारिलने लकरी॥
जो हम निश्चय किया, सोइ है तत्त्व जथारथ।
इमि हठसों एकांत, गहै वर्जित परमारथ॥
सो भमै अगामीकालमें, पंचपरावर्त्तन करत।
दुखफल अनंत भोगत सदा, कबहुँ न भवसागर तरत॥९५॥

दोहा।

मिथ्याबुद्धि विकारतें, जे जन अज्ञ अतीव।
अजथारथ ही तत्त्व गहि, हठजुत रहत सदीव॥ ९६॥
जदिप मुनिमुद्रा धरैं, तदिप मुनि नहिं सोय।
सोई संसृत तत्त्व है, इहां न संशय कोय॥ ९७॥
ताको फल परिपूर्ण दुख, पंच परावतरूप।
भमै अनंते काल जग, यों भाषी जिनभूप॥ ९८॥
और कोइ संसार नहिं, संसृत मिथ्याभाव।
जिन जीवनिके होय सो, संसृततत्त्व कहाव॥ ९९॥

(२)

अनंगशेखर-दंडक।

मिथ्या अचार टारिकै जथार्थ तत्त्व धारिकै, विवेक दीप वारिकै सरूप जो निहारई। प्रशांत भाव पायकै विशुद्धता बढ़ाय पुव्व,-बंध निर्जरायकै अबंध रीति धारई॥ न सो

भमै भवावली तरै सोई उतावली, सोई मुनीशको पदस्थ पूर्णता सुसारई। यही सु मोखतत्त है त्रिलोकमें महत्त है, सोई दयानिधान भव्य वृंदको उधारई ॥ १०० ॥

दोहा।

जो परदरवनि त्यागिकै, है स्वरूपमें लीन।
सोई जीवनमुक्त है, मोक्षतत्त्व परवीन ॥ १०१ ॥

(३)

मनहरण।

सम्यक प्रकार जो पदारथको जानतु है, आपा पर भेद भिन्न अनेकांत करिकै। इंद्रिनिके विषैमैं न पागै औ परिग्रह,—पिशाच दोनों भाँति तिन्हें त्यागै धीर धरिकै ॥ सहज स्वरूपमें ही लीन सुखसैन मानो, करम कपाटको उघारै जोर भरिकै। ताहीको जिनिंद मुक्तसाधक बखानतु हैं, सोई शुद्ध साध ताहि वंदों भर्म हरिकै ॥ १०२ ॥

दोहा।

ऐसे सुपरविवेकजुत, लसैं शुद्ध जे साध।
मोखतत्त्वसाधक सोई, वर्जित सकल उपाध ॥ १०३ ॥

(४)

मनहरण।

शुद्ध वीतरागता सुभावमें जु लीन शिव,—साधक श्रमन सोई मुनिपदधारी है। ताही सु विशुद्ध उपयोगीके दरश ज्ञान, भाषी है जथारथपनेसों विसतारी है ॥ फेर ताही शुद्ध

मोखमारगी मुनीशहीकैं, निराबाध मोखकी अवस्था अधिकारी है। सोई सिद्धदशामें विराजै ज्ञानानंदकंद, निरद्वंद वृंद ताहि वंदना हमारी है ॥ १०४ ॥

दोहा।

मोक्षतत्त्वसाधन यही, शुद्धुपयोगी साध।
सकलमनोरथसिद्धिप्रद, शुद्ध सिद्ध निरवाध ॥ १०५ ॥

(५)

छप्पय।

जो यह शासन भलीभाँति, जानै भवि प्रानी।
श्रावक मुनि आचार, जासुमधि सुगुरु बखानी ॥
सो थोरे ही कालमाहिं, शुद्धातम पावै।
द्वादशांगको सारभूत, जो तत्त्व कहावै ॥
मुनि कुंदकुंद जयवंत जिन, यह परमागम प्रगट किय।
वृंदावनको भव उदधितैं, दे अवलंब उधार लिय ॥ १०६॥

द्वादशांगश्रुतिसिंधु, मथन करि रतन निकासा।
सुपरभेदविज्ञान, शुद्ध चारित्र प्रकासा ॥
सो इस प्रवचनसारमाहिं, गुरु वरनन कीना।
अध्यातमको मूल, लखहिं अनुभवी प्रवीना ॥
मुनि कुंदकुंदकृत मूल जु सु, अमृतचंद टीका करी।
तसु हेमराजने वचनिका, रची अध्यातमरसभरी ॥ १०७॥

मनहरण।

दोइ सौ पछत्तर पराकृतकी गाथामाहिं, कुंदकुंदस्वामी

रची प्रवचनसार है। अध्यातमवानी स्यादवादकी निशानी जातैं, सुपरप्रकाशबोध होत निरधार है ॥ निकट—सुभव्य-हीके भावभौनमाहिं याकी, दीपशिखा जगै भगै मोह अंधकार है। मुख्य फल मोक्ष औ अमुल्य शक्रचक्रिपद, वृंदावन होत अनुक्रम भव पार है ॥ १०८ ॥

अथ कविव्यवस्था लिख्यते।

छप्पय।

अगरवाल कुल गोल, गोत वृंदावन धरमी।
धरमचंद जसु पिता, शितावो माता परमी॥
तिन निजमतिमित बाल, ख्याल सम छंद बनाये।
काशीनगरमँझार, सुपरहितहेत सुभाये॥
प्रिय उदयराज उपगारतैं, अत्र रचना पूरन भई।
हीनाधिक सोधि सुधारियो, जे सज्जन समरसमई ॥ १०९ ॥

मनहरण।

वाराणसी आरा ताके बीच बसे बारा सुरसरिके किनारा तहां जनम हमारा है। ठारै अड़ताल माघ सेत चौदै सोम पुष्य, कन्या लग्न भानुअंश सत्ताइस धारा है ॥ साठेमाहिं काशी आये तहां सतसंग पाये, जैनधर्ममर्म लहि भर्म भाव हारा है। सैली सुखदाई भाई काशीनाथ आदि जहां, अध्यातमवानीकी अखंड बहै धारा है ॥ ११० ॥

छप्पय।

प्रथमहि आदृतराम, दया मोपै चित लाये।
सेठी श्रीसुखलालजीयसों, आनि मिलाये॥
तिनपै श्रीजिनधर्ममर्म, हमने पहिचाने।
पीछे चकमूलाल मिले, मोहि मित्र सयाने॥
अवलोके नाटकत्रयी पुनि, औरहु ग्रंथ अनेक जब।
तब कविताईपर रुचि बढ़ी, रचो छंद भवि वृंद अब॥१११॥
सम्वत विक्रमभूप, ठारसौ त्रेशठमाहीं।
यह सब बानक बन्यौ, मिली सतसंगतिछाहीं॥
तब श्रीप्रवचनसार, ग्रन्थको छंद बनावों।
यही आश उर रही, जासुतैं निजनिधि पावों॥
तब छंद रची पूरन करी, चित न रुची तब पुनि रची।
सोऊ न रुची तब अब रची, अनेकांत रससों मची॥११२॥

अथ ग्रन्थपरिसमाप्तिमंगल।

दोहा।

वंदों श्रीसरवज्ञ जो, निरावरन निरदोष।
विघ्नहरन मंगलकरन, मनवांछित सुख पोष॥ ११३ ॥
पंचपरमगुरुको नमो, उर धरि परम सनेह।
भवदधितैं भवि वृंदको, पार उतारत तेह॥ ११४ ॥
जिनवानी जिनधर्मको, वंदों बारंबार।
जिस प्रसादतैं पाइये, ज्ञानानंद अपार॥ ११५ ॥

१ यह दोहा छंदशतकमें भी है।

सज्जनसों कर जोरके, करों वीनती मीत ।
मूल चूक सब सोधिके, शुद्ध कीजियौ रीत ॥ ११६ ॥
यामें हीनाधिक निरखि, मूलग्रंथको देखि ।
शुद्ध कीजियो सुजनजन, बालबुद्धि मम पेखि ॥ ११७ ॥
यह मुनि शुभचारित्रको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंत रहो सदा, शशि सूरज उनिहार ॥ ११८ ॥

अथ कविवंशावली लिख्यते ।

काव्य (२४ मात्रा)।

मार्गशीर्ष गत दोय, और पंद्रह अनुमानो ।
नारायन विच चंद्र, जानि औ सतरह जानो ॥
इसी बीच हरिवंश, लाल बाबा गृह जाये ।
नाम सहारूसाह, साहजूके कहलाये ॥ ११९ ॥
बाबा हीरानंदसाह, सुंदर सुत तिनके ।
पंच पुत्र धनधर्म,—वान गुनजुत थे इनके ॥
प्रथमे राजाराम, बबा फिर अभैराज सुनु ।
उदयराज उत्तम सुभाव, आनंदमूर्ति गुनु ॥ १२० ॥
भोजराज औ जोगराज पुनि, कहे जानिये ।
इन पितु लग काशी, निवास अस सुखद मानिये ॥
अब बाबा खुशहाल,—चंद सुतका सुनु वरनन ।
सीताराम [illegible], वंदों तिन चरनन ॥ १२१ ॥

दादा हमारे लालजीय, कुल औगुन खंडित ।
तिन सुत मो पितु धर्मचंद, सब शुभजसमंडित ॥
तिनको दास कहाय, नाम मो वृंदावन है ।
एक भ्रात औ दोय, पुत्र मोकों यह जन है ॥ १२२ ॥
महावीर है भ्रात नाम, सो छोटा जानो ।
ज्येष्ठ पुत्रको नाम, अजित इमि करि परमानो ॥
मगसिर सित तिथि तेरस, काशीमें सब जानो ।
विक्रमाब्द गत सतरहसै, नव विदित सु मानो ॥१२३॥
मो[1] लघु सुत है शिखरचंद, सुंदर सुत ज्येष्ठको ।
इमि परिपाटी जानिये, कह्यो नाम लघु श्रेष्ठको ॥

पद्धडी ।

संवत चौरानूमें सु आय । आरंतें परमेष्ठीसहाय ॥
अध्यातमरंग पगे प्रवीन । कवितामें मन निशिद्यौस लीन१२४
सज्जनता गुनगरुवे गँभीर । कुल अग्रवाल सु विशाल धीर ॥
ते मम उपगारी प्रथम पर्म । साँचे सरधानी विगत भर्म१२५
भैरवप्रसाद कुल अग्रवाल । जैनी जाती बुधि है विशाल ॥
सोऊ मोपै उपकार कीन । लखि मूल चूक सो शोध दीन१२६

छप्पय ।

सीताराम पुनीत तात, जसु मात हुलासो ।
ज्ञात लमेचू जैनधर्म, कुल विदित प्रकासो ॥

१ इन दो तुकोंमें दो २ मात्रायें अधिक हैं । और यह छन्द दोनों ही प्रतियोंमें आधा है ।

संशोधनपत्र ।

प्रथम अधिकार—पृष्ठ १ में मंगलाचरणके जो छह पद्य हैं, वे भाषा वचनिकाके कर्ता पंडित हेमराजजीके हैं। परन्तु उनकी संख्या पृथक् नहीं लगाई गई है।

चौथा अधिकार—इस अध्यायके प्रारंभके दोहेकी संख्या ग. नहीं की गई है। इस लिये अन्तमें छन्दोंकी संख्या १२४ हुई है, उ. १२५ समझना चाहिये।

छठा अधिकार—पृष्ठ १३६ के माधवी छन्दपर (८) का नम्ब रहना चाहिये और दूसरे पृष्ठ १३८ के मत्तगयन्द छन्दपर (१३) क नम्बर होना चाहिये। इनके सुधारलेनेसे अधिकारके अन्तकी गाथाक नम्बर (५४) के स्थानमें (५६) हो जावेगा।

सातवां अधिकार—प्रारंभके हेडिंगमें सप्तमोऽध्यारित्राधिकारः के स्थानमें सप्तमश्चारित्राधिकारः पढ़ना चाहिये। पृष्ठ १७३ में 'भावलिंग शीर्षकपर गाथाका नम्बर नहीं है, सो (५) होना चाहिये। पृष्ठ १७ में (५) के स्थान में (६) पृष्ठ १७५ में (६) के स्थानमें (७–८) १७६ (७) के स्थानमें (९) और (८) के स्थानमें (१०–११) कर लेना चाहिये

ग्रन्थान्त—में सम्पूर्ण गाथाओंकी संख्या २७५ लिखी है, परन्तु उसमें एककी भूल है। हिसावसे २७४ ही होते हैं। हेमराजजीव वचनिकोंमें भी २७४ ही गाथा हैं। इसी प्रकार छन्दोंकी संख्याका जो जो ११६२ बतलाया है, उसमें भी १३ का फर्क है। हिसाव से ११ होना चाहिये। करहलकी प्रतिमें अन्तके अध्यायमें १० नम्बरोंकी भू रह गई है, और अन्तके ३ श्लोकोंपर नम्बर नहीं हैं, कुल ११७१ पीठिकाके ६८ छन्द अलग करनेसे ११०७ छन्द रहते हैं, जो १०९ से १३ अधिक हैं। किसी २ अध्यायके अन्तमें दी हुई गाथासंख्या तथ छन्दसंख्याका जोड़ भी बराबर नहीं मिलता है, परन्तु वह अन्तमें स हो जाता है।